राधास्वामी योग

प्रथम भाग

(उर्दू पुस्तक का अनुवाद)

लेखक—
महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम. ए.,

सम्पादक—
नन्दूभाई
(निज़ामाबाद दक्षिण)

सहायक सम्पादक—
देवीचरन मीतल
(लेखराज नगर) अलीगढ़।

प्रथम वार] सर्वाधिकार सुरक्षित [मूल्य १) प्रति

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ
१	प्रार्थना	३
२	अरदास (कविता)	४
३	अर्पण	६
४	राधास्वामी योग लिखने का कारण	११
५	भूमिका	१५
६	संदेश	७४

—:❀:—

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः ।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्मः तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥

शिव

वर्ष २ | सितम्बर १९५६ | तरङ्ग ७

सत है सुख चित है सुख, सुख आनन्द ही का रूप है ।
यह हमारी देह क्या है, ब्रह्म सुख का रूप है ॥ १ ॥
स्रोत निर्मल जल का जैसे, कूप के है बीच में ।
वैसे ही सुख का भी झरना, रूप के है बीच में ॥ २ ॥
बाहरी वृति हटाकर, जब हुये अन्तर मुखी ।
भर्म दुख का मिट गया, हम हो गये सच्चे सुखी ॥ ३ ॥
अन्तरी वृती के साधन, से गये सब रोग सोग ।
योग सुख का होगया, इससे न होगा अब वियोग ॥ ४ ॥
राधास्वामी ने बताया, सुख का साधन आनकर ।
अपने अन्तर देखलो तुम, पुतलियों को तानकर ॥ ५ ॥
घट में अनहद धुन सुनो, बाहर लगाकर तीन बन्द ।
सुख में जाते ही मिट जायगा, सब भव का द्वन्द ॥ ६ ॥
शब्द सुख है सुरत सुख है, घट में सुख भण्डार है ।
शब्द के साधन से, भव सागर से बेड़ा पार है ॥ ७ ॥

—:※:—

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

❀ सप्रेम धन्यवाद ❀

बड़े हर्ष की बात है कि "राधास्वामी योग" के प्रकाशन के लिये निम्नलिखित सज्जनों ने 'शिव' को आर्थिक सहायता प्रदान की है। इसके लिये 'शिव' परिवार इनका बड़ा कृतज्ञ है और मालिक से उनके कल्याण की प्रार्थना करता है।

(१) श्री कलापटी मल्लिया जी डा० खा० रेगूड़ा ताल्लुका इन्दौल जि० मैडक (हैंदराबाद दक्षिण) २००) रु०

(२) श्री बुरगू जगदीश्वर जी सिकन्दराबाद दक्षिण
(३) श्री इन्दुरी इश्वरिया जी ,, ,,
(४) श्री पुन्डडूटूरी हनमत राव जी ,, ,,
(५) श्री चैपुरी चन्द्रिया जी ,, ,,
(६) श्री लोकल कुसमिया जी ,, ,,
} २००)

—:❀:—

श्री मुरारीलाल जी रिटायर्ड इंजीनियर देहरादून ने १००) रु० 'शिव' की सहायतार्थ भेजे हैं। 'शिव' परिवार उनका हृदय से कृतज्ञ है। मालिक उनका कल्याण करे। मैनेजर

❀ दशहरा-सत्संग की सूचना ❀

गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी परम संत परम दयाल फकीरचन्द जी महाराज का सत्संग तारीख १३ अक्टूबर ५६ से १५ अक्टूबर ५६ दिन शनिवार, रविवार, सोमवार को सेठ दुर्गादास जी के मकान नं० I—सी/१६ रोहतक रोड़ करौलबाग, देहली में होगा।

अतः सब प्रेमी भाइयों का सत्संग में शामिल होने के लिये निमंत्रण दिया जाता है कि पधार कर सत्संग से लाभ उठावें।

नोट—(१) ठहरने और भोजन का यथा शक्ति प्रबन्ध किया जायगा। आने वाले सज्जन अपना बिस्तर साथ लावें।

(२) यह मकान देहली जंकशन से करीब २॥ मील दूर है सवारी हर समय मिलती है। यह रोहतक रोड़ पर लिबर्टी सिनेमा से करीब १ फर्लांग सराय रुहल्ला स्टेशन की ओर है। सड़क पर "फालिज, लकवा, अर्धांङ्ग का बड़ा बोर्ड लग रहा है। उसके सामने ही गली है। विनीत—

नन्दलाल सच्चदेव उर्फ आनन्द दयाल आ० सैक्रेटरी दयाल फकीर सत्संग सभा २५/३२ पुराना राजेन्द्र नगर, नई देहली।

परम पुरुष राधास्वामी जी महाराज

॥ राधा स्वामी सहाय ॥

परम पुरुष पूरण धनी राधास्वामी दयाल

—:o:—

कलामे[1] नूर ने आकर पलट जो दी तक़दीर।
तो क़ैद व बन्द[2] की शिकस्ता[3] होगई ज़ंजीर॥
जो राधास्वामी ने अपना ज़हूर[4] फ़रमाया।
तो बोले लोग कि यह ज़ात[5] है अलीम व ख़बीर[6]॥
क़दम की ख़ाक जबीं[7] पर लगा लिया जिसने।
उसे मिली वहीं तक़दीस[8] व नूर की अक्सीर[9]॥
कलाम करते थे जब मुँह से फूल झड़ते थे।
अजब थी जादू बयानी में आपके तासीर[10]॥
नये ख्याल नई बंदिश और नये मज़मून।
नई थी तरज़ की तहरीर और नई तक़रीर॥
खुदा ने मेहर[11] से जलवा[12] दिखा दिया अपना।
तरीक़त[13] और रियाज़त[14] की बढ़गई तौक़ीर[15]॥
सफ़ाई से जो हर एक बात की हुई तौज़ीह[16]।
इसी से हिन्दू मुसलमान के वह हुये पीर॥

---

(१) दैवी वाणी (२) बन्धन (३) टूट गई (४) प्राकट्य (५) व्यक्तित्व (६) ज्ञान से परिपूर्ण (७) माथा (८) पवित्रता (९) रसायन (१०) प्रभाव (११) कृपा (१२) रूप (१३) निष्ठा (१४) अभ्यास (१५) मान (१६) स्पष्ट व्याख्या।

हुज़ूर मोअल्ला मुक़द्दस
के
चरणों में अरदास

—:०:—

गुरु के चरण सरोज में, कोटि कोटि परनाम।
गुरु के पद में मुक्ति पद, सत पद धुरपद ठाम ॥१॥
गुरु बानी सत मान सर, मैं तो हंस सरूप।
अमृत पान सदा करूँ, त्याग भरम भवकूप ॥२॥
गुरुबानी सुख दायनी, निरबानी-निजसार।
बोलूँ तो गुरुबचन नित, महिमा अगम अपार ॥३॥
गुरु संगत जग दुख मिटा, सूझा अलख अरूप।
गुरु में गुरुपद तत्व सब, गुरु सत मत के भूप ॥४॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सुर, निगम अगम सद ग्रन्थ।
गुरु पद नख में सब बसें, वेद शास्त्र शुचि पंथ ॥५॥

—:०:—

ईश ब्रह्म अवगत कला, उन्मनि लगी समाध।
जब मस्तक गुरु पद झुका, पाया अगम अगाध ॥६॥
सगुण अगुण, गुण सम्पदा, माया ब्रह्म विचार।
गुरु संगत मिल सब लखे, तज अविवेक विकार ॥७॥
सहस कंवल दल जोति मय, त्रिकुटी ओ३म् स्थान।
सुन्न भंवर सत धाम गति, गुरु के बचन निशान ॥८॥

शब्द अशब्द अनाम अब, अद्भुत विमल प्रकाश।
एक गुरु के बचन में, आस सुआस, सुपास ॥९॥
विज्ञानी ज्ञानी जती, जोग जुक्ति के दाव।
बिन गुरु मरम न पावहीं, कोटिन करें उपाव ॥१०॥

—:o:—

जप तप संयम बहु किये, घूमे देश विदेश।
भटक भटक भटकत मरे, बिन गुरु के उपदेश ॥११॥
विद्या बुद्धी चातुरी, झूँठा वाद विवाद।
गुरुपद मिल सबको तजा, लागी सुन्न समाध ॥१२॥
भरम मिटा संशय गया, खुली मरम की खान।
जड़ चेतन ग्रंथी खुली, तब पाया गुरु ज्ञान ॥१३॥
पढ़-लिख दुबिधा में फँसे, मन तो भया अशान्त।
जब आये गुरु चरण में, बुद्धि भई निरभ्रान्त ॥१४॥
तीरथ में पाखान जल, बन पर्बत दुख धाम।
बिन गुरु कृपा न गम लखे, मिले न सत सतनाम ॥ १५

साध समान न कोई सगा, संत समान न मीत।
गुरु सम हितकारी नहीं, लहे न प्रेम प्रतीत ॥१६॥
विद्यापढ़ पंडित भये, अटके माया जाल।
ज्ञान कथत ज्ञानी थके, शब्द जाल जंजाल ॥१७॥
वेद पढ़ा तो खेद अति, शास्त्र शासना[1] पाय। (दुख[1])
ऐसा कोई ना मिला, सहजे लेय छुड़ाय ॥१८॥
ऐसे तो सत गुरु मिले, दीन बन्धु सुदयाल।
बांह पकड़ खींचा इधर, आप ही लिया संभाल ॥ १९॥
हाथी अटका कीच में, केहि विधि निकसे आय।
जितना बल पौरुष करे, उतना ही धंस जाय ॥२०॥

निज बल त्याग भरोस गुरु, आस कुआस निरास ।
प्रगटे पल में सत गुरु, छुटा फंद से दास ॥२१॥
ऋद्धि सिद्धि नौ निद्धि यह, माया ही के भर्म ।
सिद्ध साधक भूले सकल, लखा न निज पद मर्म ॥२२॥
उरझि उरझि उरझे महा, अब सुरझावे कौन ।
सुरझावन हारा गुरु, करे जो संगत गौन ॥ २३॥
ना विद्या ना बाहु बल, ना मन में हंकार ।
ना भक्ति ना प्रीति रुचि, सतगुरु करो उद्धार ॥२४॥
गुरु से कोई नहिं बड़ा, यह जाना अब जान ।
गुरु चरण पर वारिया, देह गेह मन प्राण ॥२५॥
गुरु से भेद जो मिल गया, शीश उतारा आप ।
चरण-शरण बलि-बलि गये, मिटा देह का पाप ॥२६॥
मानुष जन्म अमोल था, नहिं तोल नहिं मोल ।
सुफल भया जब गुरु मिले, सुना जो अद्भुत बोल ॥२७॥
एक आस गुरु चरण की, एक भरोसा मन ।
एक दास की बीनती, एक ही प्रेम जतन ॥२८॥
प्रेम गुरु से कीजिये, गुरु जो करें सहाय ।
जो गुरु शरणागत भया, फिर नहिं भटका खाय ॥२९॥
आप मिले आपहि कहा, आपहि लिया बुझाय ।
आप-आप मिल आप है, आप-आप समझाय ॥३०॥

गुरु समुद्र से अगम अति, लहर देव मुनि वृन्द ।
ईश ब्रह्म हैं धार सम, जीव जन्तु सब बुन्द ॥३१॥
प्रगट प्रगट प्रगटा प्रगट, आप जीव के काज ।
अब तो मैं गुरु का भया, त्याग जगत की लाज ॥३२॥
गुरु तड़ाग मैं कमल जिमि, शोभा पाया आय ।
जग में फैली बास भलि, गुरु चरनन बल पाय ॥३३॥

गुरु तो चन्द्र स्वरूप हैं, मैं चकोर बलवान।
पल-पल गुरु मूरति लखूं, कहीं और नहिं ध्यान ॥४॥
गुरु गम सिन्ध अगाध में, करूँ सदा स्नान।
त्यागूं जग का मैल सब, पाऊं गति मति ज्ञान ॥३५

मैं बालक गुरु मातु-पितु. खेलूं प्रेम की गोद।
संशय भरम में ना पड़ूं, पाऊं बोध सुबोध ॥३६॥
नाथ ! तुह्मारा आसरा, तुमने किया सनाथ।
साथ न छोड़ूं चरण का, रहूँ तुम्हारे साथ ॥३७॥
काम सकाम अकाम की, रहे न मन में आस।
तुम तो सांचे सतगुरु, मैं सांचा सत दास ॥३८॥
सेवा हित चित से करूं, फल की चाह न कोय।
सुख-दुख सिर ऊपर सहूँ, होना होय सो होय ॥३९॥
किस की कीजै बन्दना, किस की कीजे सेव।
केहि बल जीतूं जगत को, पूज कौन सत देव ॥४०॥
गुरु की कीजै बन्दना, गुरु की कीजै सेव।
गुरु बल जीतो जगत को, पूज-पूज गुरु देव ॥४१॥

लहर जो उठी समुद्र में, बुन्द पड़ा अति दूर।
विलपे तड़पे रात-दिन सहवियोग दुख भूर ॥४२॥
देख दशा तब बुन्द की, क्षोभा सिन्ध अपार।
लहरी आई दया की, बुन्दहि किया संभार ॥४३॥
बुन्द सिन्ध की एक गति, लख पावे कोई साध।
जब लख पावे भरम यह, छूटे सकल उपाध ॥४४॥
पंडित तो पोथी पढ़े, मन में बड़ अहंकार।
पांडे तीरथ में खपे, दान दक्षिणा लार ॥४५॥

भेष यती का धार कर, घर-घर माँगी भीख ।
सतगुरु की संगति बिना, लही न पूरी सीख ॥४६॥
ज्ञानी ग्रन्थन में बंधे, नहिं कछु जाना भेद ।
बक-बक निस दिन खो गये, हटा न संशय खेद ॥४७॥
माया ब्रह्म समान दोउ, दोऊ द्वन्द अज्ञान ।
द्वन्द वास जब मन बसे, केहि विधि सूझे ज्ञान ॥४८॥

मैं तो गुरु चरनन लगा, जैसे दीप पतंग ।
जरी कामना कल्पना, रहा न बाकी अंग ॥४९॥
मैं तो कीट समान हूँ,गुरु भृङ्गी के रूप ।
ध्यान लगा पद कमल का, प्रगटा अमर अरूप ॥५०॥
मैं हूँ बन की मिरगनी, गुरू बीन के बोल ।
तन मन की सुधि बिसर कर, सहजे भई अडोल ।५१
मैं मछली गुरु सिन्धु गति, खेलूं जल के मांहि ।
मीन सिंधु गति क्यों तजे, सत गुरु पकड़ी बाँह ॥५२॥
मैं तो किरन के भाव हूं, सतगुरु भानु महान ।
किरन मिली जो भानु में, क्या कोई सके अलगान ।५३

भक्ति दान गुरु दीजिये, चरन पखारूं नित ।
चरणामृत की लालसा, और न कोई चित ॥५४॥
निर्वैरी निःकामना, निःकामी निज दास ।
राधास्वामी दया कीजिये, सब से रहूं उदास ॥५५॥

हुज़ूर राय सालिग्राम बहादुर

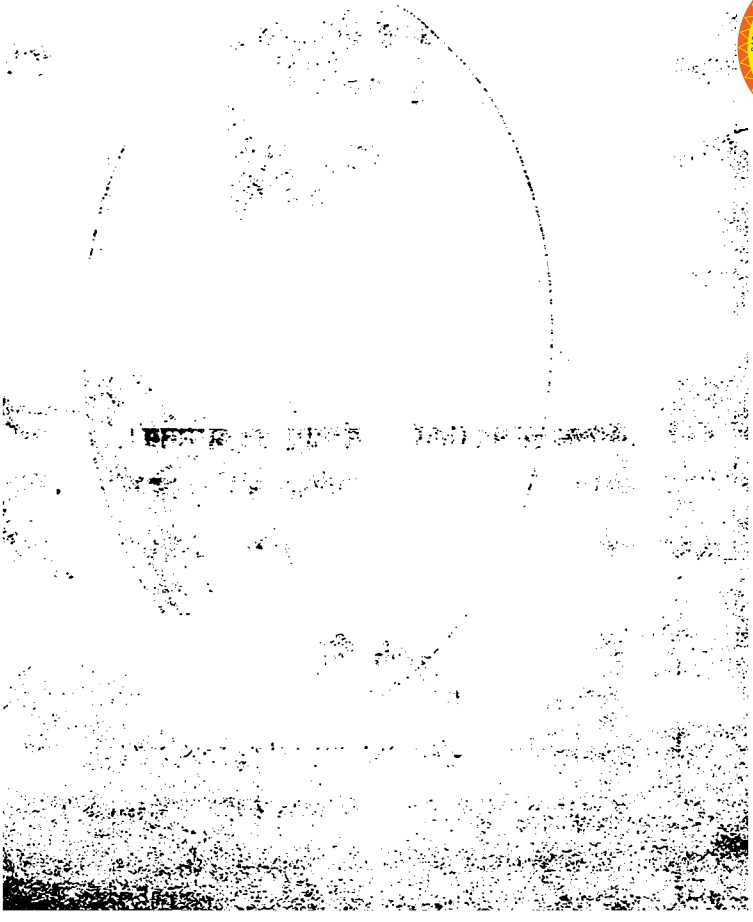

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

हुज़ूर मोअल्ला राय सालिग्राम साहब बहादुर राधास्वामी के

चरण कमल की शरण

की सुमिरण में

❋ अर्पण ❋

—:o:—

(१) मंगलम् गुरुदेव मूरति, मंगलम् पद पंकजम् ।
मंगलम् अव्यक्त अनुपम, मंगलम् भव गंजनम् ॥

(२) मंगलम् धुरपद निवासी, मंगलम् सत् आसनम् ।
मंगलम् निरवाण सद् गति, मंगलम् जनरंजनम् ॥

(३) मंगलम् ज्ञान स्वरूपम्, मंगलम् आनन्द रूप ।
मंगलम् चैतन्य सदनम्, मंगलम् सत् सत्य भूप ॥

(४) मंगलम् योगेन्द्र माया, तीत मंगल दायकम् ।
मंगलम् संसार सारम्, अद्भुतम मुनि नायकम् ॥

(५) मंगलम् त्रयगुण रहित, अपरोक्ष परोक्ष निवासनम् ।
मंगलम् त्रयकाल ज्ञाता, मंगलम् भवनाशनम् ॥

(६)　आदि कारण मूल कारण, मध्य आदि अनन्त जो।
मंगलम् करुणा सदन, शुभ तत्व परम जगद् प्रभो ॥

(७)　आप प्रगटे इस जगत, में जीव काज सुधारने।
शब्द नाव बनाय सुन्दर, जीव दुखित उबारने ॥

(८)　नम्रता अरु दीनता से, भेंट सतगुरु लीजिये।
मैं हूँ शरणागत तुम्हारा, दास अपना कीजिये ॥

(९)　राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी जप सदा।
त्याग जग के मोह धन्धे, पाउँ भक्ति सम्पदा ॥

५ जून १९१९　　　　　　　　सेवकों में सबसे दीन अधीन

'शिव'

❀ राधास्वामी जोग के लिखने का कारण ❀

—:o:—

पक्षपात रहित होना ही सचाई की जान है। आत्मिक विषय पर हठधर्मी करना अत्यन्त मूर्खता है। राधास्वामी मत की बाबत जितना बेइन्साफी से काम लिया गया है अथवा अब तक लिया जा रहा है, दुनियाँ में शायद ही किसी पंथ या सम्प्रदाय के साथ यह व्यवहार किया गया हो। सचाई का विरोध तो एक साधारण-सी बात है। भौतिक जगत में आत्मा छिपा हुआ रहता है। शरीर ही दिखाई पड़ता है। शरीर आत्मा के प्राकट्य में सदा रुकावट बना रहता है। यह बात हमेशा से चली आती है। जब कभी कोई अवतार, वली, नबी, भक्त और आध्यात्मिक गुरु प्रगट हुआ, दुनियाँ उसके पीछे पड़ गई। यह ऐतिहासिक घटनायें हैं। कबीर साहब के साथ विरोध किया गया। नानक साहब के साथ कुछ कम विरोध नहीं हुआ। इसी प्रकार हुजूर महाराज का प्रगट होकर जीवों को चिताना इस प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं की बौछार से बच नहीं सकता था, लेकिन इस अवसर पर विरोधियों को बहुत दूर की सूझी। उसी समय में खुल्लम-खुल्ला मशहूर किया गया कि यह जूठा खिलाने और थूक चटाने का पंथ है। कोई सन्त ऐसा नहीं हुआ जिसकी प्रसादी लेना कभी बुरा समझा गया हो। प्रत्येक धर्म, पंथ या मत में इसका रिवाज है। यहाँ चूँकि केवल बदनाम करने के उद्देश्य से यह बात प्रचलित की गई थी, इसलिये विरोधियों ने इसे अपना सबसे अधिक शक्तिशाली शस्त्र समझा।

हुजूर की मौज ! मैं आर्य समाज के उच्चकोटि के लोगों में रहते हुए जब आत्मिक बेचैनी के दुःख से तंग आ गया, तब राधास्वामी मत की शरण ली। चारों ओर से आक्षेप प्रारम्भ हुए। उनका यहाँ वर्णन करना व्यर्थ में विषय को बढ़ाना है। अन्त में हमारे मित्रों ने यह दोषारोपण किया कि राधास्वामी मत की पुस्तकें अन्य लोगों से छिपाई जाती हैं। इसमें लज्जा की कोई बात अवश्य है, परन्तु इन लोगों की समझ में यह न आ सका कि जो लोग अधिकारी नहीं हैं, उनको इन पुस्तकों से क्या लाभ होगा और भौतिकवादी आध्यात्मिक विषय को किस प्रकार समझ सकेंगे। बात केवल इतनी थी मगर यहाँ तो बात का बतंगड़ बनाना था। मैंने इस नासमझी को दूर करने को लेखनी उठाई। 'साधू' नामी पत्र निकाला। 'तत्वदर्शी', 'सरस्वती भंडार', 'सन्त सन्देश', 'विज्ञानी' आदि आदि अनेक सर्वप्रिय मासिक पत्र लिखने और निकालने प्रारम्भ किये। सैकड़ों आध्यात्मिक पुस्तकें लिखीं और अनसमझी की उलझन में फँसे हुए भाइयों को उनके अध्ययन करने तथा खंडन करने का अवसर दिया कि वे खण्डन के क्षेत्र में आकर अपने दिल का गुबार निकालेंगे; मगर अफ़सोस है कि किसी ने लेखनी नहीं उठाई। मेरा उद्देश्य यह था कि वे राधास्वामी मत की बुराइयाँ प्रगट करते और मुझे सोचने का अवसर हाथ आता। मैं किसी पन्थ या सम्प्रदाय का अपमान नहीं करना चाहता। राधास्वामी मत चूँकि एक सहनशील और शान्ति प्रिय पन्थ है, उसका आदेश भी नहीं है कि किसी धर्म या सम्प्रदाय या उसके आचार्य या महापुरुष के विरुद्ध कोई अपमानसूचक शब्द लेखनी या वाणी से निकाला जाय; क्योंकि प्रत्येक धर्म या पंथ अपने भाव, विचार और आध्यात्मिक विश्वास के अनुसार एक अनादि सत्ता वाले पुरुष की पूजा का दम भरता है।

भिन्नता का होना प्रकृति की जान है। फिर यहाँ किसी जानकार को चित्त दुखाने जैसा अपराध करने की आवश्यकता ही क्या है। मेरा मन्तव्य इस लेखनी उठाने से यह था कि विपक्षियों के तर्क-वितर्क सुनकर मुझे राधास्वामी मत के गुणों पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अब तमाम पंजाब में इसके अनुयायी बहुतायत से हो गये हैं। यह मेरे लेखों का परिणाम हुआ। यह कुछ कम सन्तोषजनक नहीं है। मैं ने न कभी प्रवचन कहे न व्याख्यान दिये और न जबानी कथन से काम लिया। लेखनी की प्रबल गति ही स्वयं शंकाओं का समाधान करती चली गई। जहाँ-जहाँ विदेशों—अमरीका, चीन, जापान आदि आदि में दौरा करने का अवसर मिला, वहाँ भी लोग इस पंथ के प्रेमी और विश्वासी होते चले गये। वे समझ गये कि अध्यात्मिक जगत में राधास्वामी मत का स्थान निराला है।

सन्त मत को क्रियात्मक (साधन) रूप में कबीर साहब ने प्रगट किया। उसको गुरु नानक साहब, दादू साहब, ग़रीबदास जी तथा अन्य अनेक महापुरुषों ने अपने-अपने अवसर पर अधिक चमका दिया, मगर समय के हेर-फेर से सार ज्ञान छिपते-छिपते इतना लोप हो गया कि अनेक पंथों के अनुयायी उसकी ओर से अनभिज्ञ होकर बेपरवाह हो गये और इस जगत व्यापी पंथ का प्रचार प्रायः लुप्त हो गया। परम पुनीत सत्पुरुष हुज़ूर महाराज ने राधास्वामी मत के द्वारा फिर से उसको पुनर्उद्धार ही नहीं किया बल्कि दार्शनिक तथा विद्वतापूर्ण रूप में उसके मौलिक सिद्धान्तों को स्पष्ट भाषा में वर्णन किया और अधिकारी पुरुषों को अध्यात्मिक उन्नति की ओर आकर्षित होने का अवसर प्रदान किया। मगर चूँकि सब पुस्तकें हिन्दी लिपि में हैं, उर्दू जानने वाले लोग इसके लाभ से वंचित हैं

और विरोधी दल की नासमझी उनको इसके लाभ उठाने से रोक रही है, इस दृष्टि से मैंने बहुत सी पुस्तकें लिखीं। अब राधास्वामी जोग के रूप में यह पुस्तक इसी ध्येय से भेंट की जा रही है। आशा है कि यह पुस्तक न केवल दिलचस्प होगी बल्कि सचाई प्रिय लोगों को सार भेद के समझने का अवसर प्रदान करगी। यदि दस-बीस लोगों ने भी साधन सम्पन्न बनने व आत्मिक आनन्द प्राप्त करने का विचार किया तो मेरा परिश्रम अकारथ न समझा जायगा।

—:o:—

६ जून १९१९ ई०]

'शिव'

❀ भूमिका ❀

सन् १८५७ ई० की रोमांचकारी और भयानक घटनाओं ने लोगों के दिलों को हिला दिया था। जान व माल अत्यन्त ख़तरे में थे। दुनियां की अस्थायी दशा देख कर देश में हर-जगह उदासी छा गई थी। सत्पुरुष हुजूर महाराज (राय-सालिग्राम साहब) के हृदय पर इस जगतव्यापी क्रान्ति ने गहरा प्रभाव डाला। वह सोचने लगे कि क्या इस व्याकुलता की दशा में कहीं शान्ति का भी चिन्ह है अथवा इसकी आशा बिल्कुल भ्रम ही-भ्रम है। वह स्वयं निराश रहने लगे। हर समय यही विचार उनके चित्त में घूमा करता था। जहाँ जाते यही प्रश्न ज़ुबान पर रहता था। जिस साधू सन्यासी को देखते उससे इसी आवश्यक गुत्थी के सुलझाने का उपाय पूछा करते थे मगर कहीं से ठीक उत्तर नहीं मिला। स्वयम् उप-निषदों और ज्ञान-ध्यान के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे मगर उनकी शिक्षा ऐसी अस्पष्ट, गोल मोल और ऐसी रहस्यमय थी कि उसका स्पष्टरूप प्रगट न हो सका। उनकी टीका और व्याख्याओं को समझने के लिये व्याख्या की आवश्यक्ता थी। विद्वानों के कथन की यथार्थ व्याख्या विद्वानों की शक्ति के बाहर है। सतज्ञान की प्राप्ति करनी (साधन व अभ्यास) पर निर्धारित है।

वाचक ज्ञान या विद्या बुद्धि के आधार पर की गई व्याख्या इस पर काफ़ी प्रकाश नहीं डाल सकती, अर्थात् यह असम्भव है। जो स्वयम् द्रष्टा तथा अनुभवी होते हैं वे ज़ुबानी तौर पर

सुनी सुनाई गोल-मोल बातों के जानने वालों से भिन्न होते हैं। कथनी या विद्वता का विषय करनी (साधन सम्पन्नता) का विषय नहीं हो सकता। आध्यात्मिक भावों के प्रभाव में आये हुये विवेकी कवि अपने भाव भरे शब्दों को गद्य में वर्णन नहीं करते और पद्य के घेरे से बाहर ही नहीं जाने देते, इसलिये सुनने वालों को उनसे अधिक लाभ नहीं पहुँच सकता। एक अवधूत मनुष्य (मजजूब) अपने भाव से बंधा रहता है। भाव के प्रभाव में काम करता है। यदि कोई ऐसा सालिक (साधक) हो जिसने संयम से काम लेकर और मानसिक व आध्यात्मिक अवस्था के मार्ग पर चल कर साधन-स्थान पार किये हैं, तो वह अवश्य कुछ थोड़ा बहुत समझ सकता है। एक अवधूत और एक साधक में यह अंतर है।

—:o:—

ऋषि आये। मस्त होकर अपना राग सुना गये। किसी ने समझा किसी ने नहीं समझा। साधु और महात्मा पैदा हुये। सुरारूपी अद्वैत का प्याला पी कर समाधि की दशा में वे सार तत्व को अलंकृत व रहस्यपूर्ण शब्दों में वर्णन कर गये। जिन्होंने सुना सम्भव है उनको उस अद्वितीय आनन्द का हिस्सा मिल गया हो। हिस्सा मिलना एक आवश्यक बात भी है मगर इससे साक्षात्कार का अवसर कहाँ है! सितार को केवल सुनकर कोई सितार बजाने वाला नहीं हो सकता। आनन्द और स्वाद तो अवश्य किसी हद तक मिलता है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता, परन्तु असली आनन्द तो जब मिलेगा सितार बजाने से ही मिलेगा। सैन-बैन के जानने वाले, सूक्ष्म बुद्धि और काव्य मर्मज्ञों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। सर्व साधारण की रुचि होती है कि बाल की खाल निकाल कर हिन्दी की चिन्दी बना कर तब उन्हें समझाया जाय। इसका

प्रबन्ध हर जगह नहीं है। यही कारण है कि पुस्तकों को पढ़ कर आज तक कोई मनुष्य सार वस्तु का सच्चा ज्ञाता नहीं बना और न बन ही सकता है। विशेष-विशेष व्यक्तियों का यहां वर्णन नहीं है। प्रश्न तो सर्व साधारण का है। यदि किसी एक दो को लाभ भी हुआ तो उसको महत्व नहीं दिया जा सकता।

—:o:—

हुजूर महाराज ने मज़हबी छानबीन प्रारम्भ की। ज्ञान का विस्तार हुआ मगर वह इतना कहाँ हो सकता था कि सर्व साधारण उससे लाभ उठाते। फिर भी कहावत है—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढूँढन गई, रही किनारे बैठ॥

सत्पुरुष राधास्वामी महाराज प्रगट हो चुके थे। वह उनसे मिले। सत्संग किया और उन्होंने दिन-प्रतिदिन वार्तालाप प्रश्नोत्तर के सिलसिले में गुप्त भेदों की समझ-बूझ और सार ज्ञान का अनुभव प्राप्त किया।

स्वामी जी महाराज के कुछ वृतान्त "सार बचन गद्य राधास्वामी" में इस प्रकार वर्णन हैं—

"हुजूर (राधास्वामी) महाराज आगरा शहर मोहल्ला पन्नी गली में सं० १८७५ बिक्रमी भादों मास की पहिली अष्टमी को दिन रात्रि के १०॥ बजे प्रगट हुए। अंग्रेजी हिसाब से अगस्त मास का महीना सन् १८१८ ई० था। और छः-सात वर्ष की उम्र से सबसे ऊँचे परमार्थ का समझाना-बुझाना खास-खास लोगों को शुरू किया।"

"हुजूर साहब का कोई गुरू नहीं था, और न उन्होंने किसी से परमार्थ का उपदेश लिया, बल्कि आप ही अपने वाल्दैन को और जो साधू कि उनकी पहिचान वाले उनके पास

आते थे। उनको हर तरह से परमार्थ के समझाने की कोशिश करते रहे।"

"करीब १५ वर्ष के अपने मकान के एक कोठे में जो अन्दरून दूसरे कोठे के था, बैठकर अभ्यास सुरत शब्द योग का करते रहे। यहाँ तक कि अक्सर औक़ात दो-दो, तीन-तीन दिन तक बाहर नहीं आते थे और न इस अर्से में हाजात ज़रूरी की तरफ तवज्जह होती थी।"

"सम्वत् १९१७ (विक्रमी) बसन्त पंचमी के दिन मुताबिक जनवरी सन् १८६१ ई० मुवाफ़िक़ अर्जी और प्रार्थना बाज़े सत्संगी और सतसंगिनों के जो ज़्यादा एक वर्ष से वास्ते जारी करने सत्संग के हठ करके ख़िदमत में अर्ज कर रहे थे, अपने मकान पर बयान सन्त मत और उसका उपदेश परमार्थी लोगों को फ़र्माना शुरू किया। और यह सत्संग सत्तरह वर्ष तक बराबर रात-दिन जारी रहा। इस अर्से में क़रीब तीन हज़ार मर्द औरत ने बहुत से क़ौम हिन्दू हर मुल्क के और थोड़े से मुसलमान, जैनी और सरावगी और कोई-कोई ईसाई ने उपदेश सन्त मत यानी राधास्वामी पन्थ का लिया। इनमें बहुत से गृहस्थी थे। और क़रीब दो-तीन सौ साधू होंगे। बाज़-बाज़ चन्द बार वास्ते दर्शन और इज़हार अपने हाल और दर्याफ्त करने हालात और बारीकियाँ और गुप्त भेद मत मज़कूर के आये। और अपने अभ्यास की हालात में ताक़त, कुदरत और बुज़ुर्गी हुज़ूर (राधास्वामी) साहब की और अन्तरदया जो उन पर फ़र्माई देखकर दिल और जान से मुअतक़िद हुए। और निहायत प्रीति और प्रतीति चरणों में करने लगे। और बाज़ जो दुनियाँ के भोगों में फँस गये और उनसे अभ्यास अच्छी तरह नहीं बन सका, वह फिर दुबारा हाज़िर नहीं हुए।....."

—:o:—

इस आम सत्संग के जारी करने में सबसे अधिक भाग हुज़ूर राय सालिग्राम साहब बहादुर ने लिया था। जब उन्होंने राधास्वामी महाराज को अपना गुरु धारण कर लिया, मन को स्थिरता और शान्ति मिल गई। फिर यह सोचा कि इस सम्पत्ति में दूसरों को भी हिस्सा मिलना चाहिए। यह भाव सत्संग जारी करने का था।

राधास्वामी मत में अधिकांश गृहस्थी ही सम्मिलित हैं। साधुओं की संख्या अधिक नहीं है। लेकिन इससे यह न समझना चाहिए कि उसमें भेष धारी साधू नहीं हैं। साधू बहुत थोड़े हैं। गृहस्थी अधिक हैं। जिस समय यह पन्थ जारी हुआ था, बहुत से साधू स्वयं ही आकर उसमें शामिल हो गये थे। उनकी बाबत **'बचन सार पद्य राधास्वामी'** की भूमिका में इस प्रकार वर्णन आया है:—

"इन अभ्यासियों में क़रीब चालीस साधू हैं। यह साधू लोग साबिक़ से भेष लेकर तलाश में परमार्थ के निकले थे। और आगरा में पहुँचकर महिमा और सिफ़त हुज़ूर साहब की सुनकर चरणों में हाज़िर हुए और भेद लेकर अभ्यास में लग गये। और जब उनको कुछ कुछ रस अभ्यास का मिलने लगा, तब अपना क़याम आगरे में रक्खा और अब यह साधू राधास्वामी बाग़ में जो शहर से बफ़ासला तीन मील के वाक़े है रहते और शहर में जो मकान हुज़ूर साहब का है वहाँ, चन्द मर्द औरतें रहते हैं और अभ्यास करते हैं।"

यह दशा प्रारम्भ में थी। अब उन की संख्या बहुत बढ़ गई है। चूंकि कई शहरों में सत्संग का प्रबन्ध है, यह हर जगह अपनी सुविधा के अनुसार वहाँ ठहर कर सत्संग का लाभ उठा रहे हैं। अब उनकी संख्या ज्ञात करना असम्भव है।

प्रारम्भ से ही परमार्थ की कमाई ऐसे ही पुरुष करते थे जो त्याग और वैराग वाले हुआ करते थे। ऋषियों के समय में चार आश्रमों का नियम था। ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और सन्यास। इनमें से सिवाय गृहस्थी के शेष तीन त्यागी हुआ करते थे। जिनको बाल्यावस्था में ही वैराग हो जाता था, वह आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचारी बने रहते थे। जब किसी गृहस्थी को वैराग होता था तो वह गृहस्थ त्याग कर बनवासी हो जाता था, और साधन और अभ्यास करता हुआ परमार्थ कमाता था। वह वानप्रस्थी कहलाते थे, और सत्संग करना कराना, अभ्यास में लगे रहना और सद्ग्रन्थों का विचार करना यह इनका नियम था। इस आश्रम को पूर्ण करने के बाद भी यदि सार वस्तु का साक्षात्कार नहीं होता था तो वह सन्यासी हो जाते थे और हर प्रकार के जप तप और संयम आदि का त्याग करके संसार में स्वतन्त्रता से विचरते थे। तीर्थ आदि जो इस समय दिखाई देते हैं, वह सब इन्हीं वानप्रस्थियों के सत्संग कराने के स्थान थे। यह चार आश्रम त्रेतायुग में अपने वास्तविक रूप में थे। अब इनका रूप बिगड़ गया है। सम्भव है कि कोई व्यक्ति ऐसा समझे कि हर एक को इन चारों आश्रमों से होकर गुज़रना पड़ता था। यह बात नहीं है। प्रत्येक को स्वतन्त्रता थी कि वह जिस आश्रम को अपने योग्य समझे उसे ग्रहण करे अथवा सब अवस्थाओं को एक एक करके छोड़ता हुआ दूसरी को ग्रहण करता जाय। यह दशा कब तक रही इसका कोई पता नहीं बता सकता। भाव व विचारों की उन्नति के साथ धार्मिक भेष-भूषा में भी परिवर्तन होता गया और उसमें विकार आता गया।

द्वापर के अंत में बुद्ध भगवान और उनके समकालीन महावीर स्वामी तीरथंकर ने सुधार किया। जो परिपाटी और नियम चालू थे उनको छुड़वाकर उनसे मिलते-जुलते नाम

बदल कर भिक्षू, महंत इत्यादि की श्रेणियाँ नियुक्त कीं और संन्यासी, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी का नाम भिक्षु, महंत, बुद्ध और जिन आदि पड़ गया।

लेकिन समय ने फिर पलटा खाया। स्वामी शंकराचार्य्य को वैदिक मार्ग के फिर से पुनर्जीवन की सूझी। उन्होंने दस नामी साधुओं का अलग अलग सिलसिला नियत किया। उनके समय से संन्यासी आदि को स्वामी का नाम दिया गया। स्वामी शंकराचार्य्य से पहिले गुरु गोरखनाथ ने नाथों, सिद्धों और साधकों का नाम जारी किया था। यह सब नाम पंथों के साधकों के हैं।

शंकर स्वामी और गोरखनाथ दोनों ही शैव थे और अद्वैत-वादी थे। उनकी शिक्षा जन साधारण को आकर्षित न कर सकी। तब स्वामी रामानुजाचार्य्य ने प्रगट होकर विशिष्टाद्वैत की नींव डाली। उनके सम्प्रदाय के साधू आचार्य्य महंत आदि कहलाते हैं। रामानुज सम्प्रदाय का प्रारम्भ एक महात्मा शटकोप नामी से, जो जाति के कंजड़ थे, हुआ था। वह जाति-पांति के बन्धन के विरुद्ध थे और उनके उत्तराधिकारियों में चान्डाल और मुसलमान तक हुये हैं, मगर स्वामी रामानुज ने फिर जाति-पांति के महत्व पर बल दे दिया। रामानुजाचार्य्य के सिलसिले में रामानन्द जी हुये। उनके सम्प्रदाय में ब्रह्मचर्य पर ज़ोर था और उनके त्यागी शिष्य वैरागी कहलाते थे। इसी प्रकार जब परमसंत कबीर साहब की बारी आई उन्होंने धार्मिक विशेषता का हक़ साधुओं के ही हाथ में नहीं रहने दिया, बल्कि गृहस्थियों को अपना उत्तराधिकारी बनाया। धार्मिक इतिहास में यह प्रथम अवसर है कि एक गृहस्थी को त्यागी और संसारी दोनों का गुरु बनाया गया; किन्तु फिर भी साधुओं की संख्या अधिक होती गई। कबीर साहब के

अनुयाई संत और साधू कहलाते थे। समय परिवर्तनशील है। दादू साहब जो कबीर वंश से ही निकले थे, उन्होंने नागा आदि विरक्तों की सम्प्रदाय चलाई। पंजाब में गुरु नानक साहब बिलकुल कबीर साहब के समान विचार वाले थे। उन्होंने धार्मिक शिक्षा का सम्बन्ध साधुओं से ही नहीं रक्खा; किन्तु यहाँ भी उनके बाद उनके पुत्र श्रीचन्द जी ने उदासियों का पंथ चला दिया और उनके शिष्य उदासी कहलाने लगे। गुरु गोविन्दसिंह जी के साधु शिष्य निर्मले अकाली और अन्य नामों से विख्यात होगये। इस तरह हर पन्थ के अनुयाइयों के नाम भिन्न-भिन्न ही होते गये।

अंत में जिस समय राधास्वामी साहब प्रगट हुए, उन्होंने साधुओं के भेष की विशेषता बिल्कुल ही नहीं रक्खी। जिन्होंने गृहस्थ का त्याग कर दिया था, उनको भी गृहस्थी गुरु के आधीन रहने की आज्ञा दी।

राधास्वामी मत के अनुयाई भेष का मान तो करते हैं और साधुओं का आदर सत्कार भी करते हैं पर इस विचार को महत्व नहीं देते कि परमार्थ की कमाई के लिये केवल साधू ही अधिकारी हैं। यह ठीक भी है। राधास्वामी पंथ में अभ्यासियों की कई श्रेणियाँ है जिन्होंने अभी सहस्रदल कमल का अभ्यास आरम्भ किया है और गुरु धारण करके सत्संग में उपस्थित होते हैं, वह सत्संगी या सत्संगिन कहलाते हैं। जिन्होंने त्रिकुटी स्थान के साधन में मन लगाया है वह साधू हैं। जो सुन्न और महा सुन्न का अभ्यास करते और विवेक के साथ समाधि की प्राप्ति करते हैं वह हंस हैं। जो इन श्रेणियों को पार करके भंवर गुफा तक पहुँचते हैं वे परम हंस हैं। सत लोक तक पहुँचे हुये सन्त और इसके परे पहुँचे हुये परम संत कहलाते हैं। लेकिन चूँकि अनुभव रूप से

इसकी समझ कठिनता से होती है कि कौन किस दर्जे तक पहुँचा है। इसलिये इन शब्दों का प्रयोग भी व्यवहारिक नहीं है। इस विषय को यहां सम्मिलित करने का हमारा अभिप्राय यह है कि पाठकों को पता लग जाय कि किस तरह साधुओं के नाम आदि से अंत तक बदलते आये हैं और उनसे क्या अभिप्राय था।

राधास्वामी मत में गृहस्थी और साधु एक समान हैं। चूंकि भिन्न-भिन्न पन्थों और सम्प्रदायों के साधुओं की संख्या अगणित हो गई है इस कारण इस में और वृद्धि करना उचित नहीं समझा गया। इन लाखों साधुओं में से थोड़े ही उच्च कोटि के व्यक्ति हैं जो साधु कहे जाने के योग्य हैं वर्ना अधिकांश तो भूले-भ्रमे हुये ही हैं। यह कारण था कि अधिक साधु बनाने की प्रथा रोक दी गई। इल्म बाअमल अर्थात ज्ञान के साथ-साथ अभ्यास आवश्यक हैं। इल्म बेअमल अर्थात ज्ञान बिना अभ्यास के किसी काम का नहीं। इससे तो वह अभ्यास ही कहीं अधिक अच्छा है जो विद्या न होते हुये किया जाय, क्योंकि अभ्यास करने से हृदय की दबी हुई शक्ति के उभार की आशा रहती है। लेकिन जिस किसी व्यक्ति ने किसी हद तक वाचक ज्ञान तो प्राप्त कर लिया मगर साधन सम्पन्न नहीं बना, तो उसमें अहंकार उत्पन्न होगा और आत्मिक पुरना न होगी। इस कारण से वह लाभप्रद होने के बजाय हानिकर सिद्ध होगा और धार्मिक शिक्षा के असली ध्येय के प्राप्त करने में असफल होगा। इस दृष्टि से राधास्वामी मत में साधन और अभ्यास पर अधिक बल दिया जाता है। इस साधन और अभ्यास के आदेश से कोई व्यक्ति ग़लती में पड़ कर इस परिणाम पर न पहुंचे कि वह ज्ञान का बिल्कुल ही विरोधी है। नहीं! ऐसा नहीं है। ज्ञान की कमी सत्संग द्वारा पूर्णतया पूरी करा दी जाती है। यही

कारण है कि हर अभ्यासी के लिए सत्संग करते रहने पर अधिक बल दिया गया है। सत्संग में सदा हर प्रकार के धार्मिक विषयों की छान-बीन की जाती है और सत्संगी बड़ी सरलता और सुगमता से साधन करता हुआ बिना पुस्तकों के पढ़े हुये विद्वान और ज्ञानी बन जाता है। राधास्वामी मत में और दूसरे पन्थों में यही स्पष्ट अन्तर है। अन्य पंथ तो अभ्यास को ज्ञान के आधीन मान कर उसके महत्व को कम कर देते हैं, किंतु यह ज्ञान को साधन के आधीन मान कर साधन ही को मुख्य बताता है और उसको महत्व देता है। चूंकि यह 'इल्म सीना' अर्थात् घट का ज्ञान है यह शुरू से ही घट को मिलता है और सदैव से ऐसा ही चला आ रहा है। सम्भव है यहाँ किसी को भ्रम हो, इस कारण इसको दृष्टान्त देकर अधिक स्पष्ट किये देते हैं। उदाहरण के रूप में जैसे बाजों का बजाना इल्म सीना अथवा घट विद्या है। बाजों में बीन, सितार, मृदंग, बांसुरी आदि सब ही शामिल हैं। इनका वर्णन पुस्तकों में आता है, लेकिन जब तक ये बाजे पूर्ण अभ्यासयुक्त गुरु से सीधे न सीखे जायेंगे, इनके बजाने में भी किसी को पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त न होगी। केवल पुस्तकें पढ़ कर कोई व्यक्ति सितार बजाने वाला न हुआ है और न हो सकता है। उसके लिये अभ्यास किये हुये गुरु की आवश्यकता है; क्योंकि वह घट का ज्ञान या इल्म सीना है। बिल्कुल इसी प्रकार आत्मिक साधन और अभ्यास का हाल है। यह भी बिना करे और बिना किसी से सीखे हुये नहीं आते। पुस्तकों से ज्ञान हो जायगा मगर वह जानकारी उस समय तक लाभदायक न होगी जब तक साधन व अभ्यास से उसपर पूरा-पूरा अधिकार न प्राप्त कर लिया जायगा। यही कारण है कि राधास्वामी मत अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा

केवल साधन के महत्व को समझाता रहता है। स्वामी जी महाराज की वाणी है :—

"यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करो, तब पाओ कुछ सार॥"

जिस प्रकार सितार बजा कर सीखने से स्वयम् उसका ज्ञान होता जाता है, उसी प्रकार साधन करते-रहने से साधन का ज्ञान स्वयं हो जाता है। सितार बजाने वाले को आवश्यक नहीं है कि वह किसी पुस्तक से सहायता ले। वह सितार को हाथ में ले। शिक्षक से पूछे। जैसा वह बतावे उस पर अभ्यास करे और अभ्यास स्वयं उसे समय पर सितार बजाने वाला बना देगा। वह स्वयं शिक्षक बन जायगा। बिल्कुल इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति धार्मिक पुस्तकों को हाथ भी न लगावे, केवल साधन करता रहे और कभी-कभी सत्संग करता रहे तो वह साधन सम्पन्न बन कर आप ही ज्ञानी बन जायगा।

—:o:—

बचन सार राधास्वामी पद्य में इस साधन के सम्बन्ध में वर्णन है :—

"राधा स्वामी मत को संत मत भी कहते हैं। पिछले वक्तों में यह मत निहायत गुप्त रहा। और चूंकि इसका अभ्यास शुरू में प्राणायाम के साथ किया जाता था, इस सबब से बहुत कम लोग वाक़िफ थे और न किसी से इसका अभ्यास बन सकता था। क्योंकि प्राणायाम करने में समय और परहेज सख्त दरकार हैं और ख़तरे भी बहुत हैं। इस सबब से यह काम इस क़दर मुश्किल था कि कोई इसमें क़दम नहीं रख सकता था। अब हुज़ूर राधा-स्वामी ने ऐसी सहज युक्ति और आसान तरीक़ा सुरत शब्द योग का अपनी दया से प्रगट किया है कि जो कोई सच्चा शौक रखता हो तो वह आसानी से इसका अभ्यास

कर सकता है । ख्वाह वह मर्द हो या औरत, ख्वाह जवान हो या बूढ़ा ।"

—:o:—

१—इस कथन से साबित है कि राधास्वामी मत की शिक्षा क्या है। योग नया नहीं है बल्कि बहुत प्राचीन है । पहले भी लोग इसे मानते थे। पर जानने वालों और करने वालों की संख्या अधिक नहीं थी और प्राणायाम के सिलसिले में साधन कराने के कारण बहुत कम अधिकारी इसकी ओर ध्यान देते थे। शब्द योग या सुरत शब्द योग का पता पातंजली भगवान के योग सूत्र, गुरु गोरख नाथजी की बाणी, बौद्धों के योगाचार्य्य मत के ग्रन्थ, उपनिषदों के देवयान पंथ और अनेक लेखों और ग्रंथों से मिलता है। उपनिषदों के सिलसिले में एक मुख्य पुस्तक का इससे संबन्ध है जो नादबिन्दु उपनिषद कहलाती है। यजुर्वेद के मंत्रों में भी इसका संकेत आया है मगर वह किसी अनुभवी पुरुष की व्याख्या के आधीन है। हिन्दुओं और बौद्धों को जाने दीजिये । यूनानी फ़िलोसफरों की बाणी में भी इसके संकेत पाये जाते हैं। स्कंदरिया के "न्यूप्लैटो निज्म" के अनुयायी इससे किसी हद तक जानकार थे। पारसियों के **सफ़र नक दसातीर** (एक पुस्तक का नाम) और **ज़रतश्तनबी** (पैगम्बर का नाम) के जिन्द (पुस्तक) में इसके संकेत आये हैं। मुसलमान सूफ़ियों में इस साधन को सूते सरमदी, शग़ल नसीरा और सुल्तानुलअज़कार कहते हैं। चुशितया, क़लन्द्रिया और नक़शबन्द्रिया आदि इसके महत्व को मानते हैं । हमारे यहाँ कबीर पन्थ, नानक पन्थ, आदि की बाणियों में बहुत वचन आते हैं । ईसाइयों की "युहन्ना" की इन्जील के आदि की आयतों में भी इसका संकेत मिलता है। हाँ, चूंकि यह घट का

भेद 'इल्म सीना' है, सिवाय राधास्वामी पन्थ के अब किस जगह इसके स्पष्टीकरण अथवा व्याख्या का सामान दृष्टिगोचर नहीं होता और न कोई व्यक्ति चाहे वह किसी सम्प्रदाय का क्यों न हो इसकी व्याख्या को मानने वाला है। प्रारम्भ में इसके अभ्यास में बड़ी कठिनाइयाँ थीं। शनैः-शनैः यह सब घट भेद के रहस्य को भूलते चले गये और अब इसकी ओर से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। सतपुरुष राधास्वामी दयाल ने अब नये सिरे से इसको जारी किया और संशोधन करके इतना सरल और सुगम बना दिया कि पाँच-सात वर्ष के बालक तक भी इसे कर सकते हैं।

—:o:—

साधन प्राचीन है। वह एक तरह का स्वाभाविक और प्राकृतिक साधन है जो मनुष्य की शक्ति को संयम में रखने और चित्त के एकाग्र करने में सहायक होता है। इससे किसी को इनकार न होना चाहिये। लेकिन राधास्वामी मत की यह विशेषता है कि उसने उसे सहज बना दिया। यह कोई छोटी बात नहीं है। सार बचन की भूमिका में यह वर्णन आता है:—

"यह (जुगत) युक्ति जो हुज़ूर साहब ने अब जारी फ़रमाई है किसी ने पिछले वक्तों में इस आसानी के साथ नहीं जारी की। और यह ही सबब है कि अन्तर मुख अभ्यास सब मतों में जो आज-कल दुनियाँ में जारी हैं गुप्त और पोशीदा हो गया। और सब मतों के लोग बाहरमुखी पूजा और धर्म-कर्म में लग गये। और सच्चे मालिक की पहचान और उससे मिलने की जुगत और उसके रास्ते और मंज़िलों के भेद से नावाक़िफ़ रह गये।"

इन पंक्तियों में कई बातें विचार करने के लिये मौजूद

हैं। प्रथम सुभीता, दूसरे अन्तरीय अभ्यास की आवश्यकता, तीसरे वाह्य साधन की अनावश्यक प्रथा, चौथे सच्चे मालिक की पहचान, पाँचवे इसके मिलने की युक्ति, छटे घट के मार्ग और स्थान।

(१) प्रत्येक कार्य के करने के उचित ढंग होते हैं और उनका पालन उस काम को सरल बना देता है। लेकिन यदि ग़लत समझा कर कोई व्यक्ति उसे कठिन कर दे तो फिर उसकी ओर से चित्त उकता जाता है, और वह उसे छोड़ बैठता है। इस प्रकार सरल से सरल काम को केवल ख्याल दिला कर पेचीदा और कठिन बना दिया जा सकता है। इसके प्रतिकूल यदि साहस और उत्साह बर्द्धक ख्याल दिलाये जांय और साथ ही साथ मानवीय सहानुभूति का व्यवहार किया जाय तो कठिन से कठिन काम को चुटकी बजाते हुये सरल कर दिया जा सकता है। योग के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही ऐसी ग़लती होती चली आ रही हैं, यद्यपि योग प्रत्येक प्राणी का प्राकृतिक कर्म है और प्रत्येक व्यक्ति अनजाने उसे करता रहता है। स्वास जाती है। स्वास आती है। स्वास ठहरती है। इन तीनों ही प्रकार के कर्मों के अन्दर योग के रेचक, पूरक, कुम्भक का होना मौजूद है। रेचक निकालना, पूरक भरना, और कुम्भक घड़े की तरह भर-कर स्थिर होना है। कौन समझदार मनुष्य इंकार करेगा कि क्षण प्रति क्षण प्रत्येक प्राणी यह कार्य नहीं करता। यही तो योग की श्रेणियां हैं। योग वास्तव में चित्त की वृति का निरोध है। यह स्वयं हुआ करता है। चित्त की वृति के निरोध में सुख चैन मिलता है।

(२) सुख हम को कहां मिलता है? इस पर थोड़े से लोग ही विचार करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को सुख-चैन उसके अन्तर ही में मिलता है और वह केवल चित्त की वृति का निरोध

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

और मन की एकाग्रता का परिणाम है। जब आदमी दिन के काम धन्धों से निवृत होकर रात के समय सो जाता है और चित्त में शान्ति आ जाती है तो उसे सोने का आनन्द प्राप्त होता है। यह मन के सुखी होने का एक नमूना है। अभी इस स्वप्न की दशा में वास्तविक आनन्द नहीं आया, क्योंकि मन अब तक शरीर के मंडल को छोड़ कर अपने अन्दर विशेष प्रकार के रेचक पूरक के ताने-बाने तन रहा है।

अब यदि वह थोड़ा सा आगे बढ़े और अच्छी तरह उसकी वृत्तियों का निरोध हो जाये तो उसे गहरा आनन्द आयेगा। इसका नाम सुषुप्ति है। सुषुप्ति को गहरी नींद कहते हैं। गहरी नींद की दशा के सुख से एक मनुष्य भी अनभिज्ञ नहीं है मगर वह सिद्धान्त या नियम को नहीं जानता। शारीरिक मंडलों में बैठा हुआ हमारा मन जब-जब साँस लेने का कार्य करता है तो उसके रेचक, पूरक और कुम्भक के कार्य्य नाक की जगह हुआ करते हैं। वह यहां जितना प्राकृतिक ढंग पर कुम्भक अर्थात् ख़ुद ज़ब्ती (आत्म संयम) का अमल या साधन करेगा, उतना ही अधिक सुखी रहेगा। कुम्भक ही के कारण मनुष्य के जीवन में भिन्नता की सूरतें रहती हैं। जिसमें जितनी ख़ुद ज़ब्ती (आत्म संयम) की शक्ति होती है उतना ही वह सांसारिक व्यवहार में सफल होता है। इच्छा शक्ति की दृढ़ता का रहस्य इसी प्राकृतिक कुंभक के पर्दे में छिपा हुआ है। यहाँ तक शारीरिक मंडल के विषय में समझ लो। इसे हम जागृत कहते हैं।

जब यही मन शारीरिक स्थूल मंडल को छोड़ कर अपने सूक्ष्म मानसिक मंडल में आता है तो यहां भी उसकी वही क्रिया होती रहती है। सांस आती है, सांस जाती है, सांस रुकती है। मानसिक मंडल का नाम स्वप्नावस्था है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का

मानसिक सुख एक समान नहीं होता और सब को एक जैसा सोने का आनन्द नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निज अनुभव साक्षी है। दूसरे साक्षी के प्रमाण की यहां आवश्यकता नहीं है। कोई अच्छे स्वप्न देखता है कोई बुरे और कोई सामान्य। कोई स्वप्न देखता हुआ अन्तर ही अन्तर में प्रसन्न होता है, कोई बुरे स्वप्न देख कर शोक संताप का लक्ष्य बनता है। बहुधा लोग स्वप्न में बड़बड़ाते हैं; रोते चिल्लाते हैं। इसका कारण भी वही है। वहां इनको चित्त की वृत्ति के निरोध में पूर्ण रूप से सफलता नहीं होती और वास्तविक आनन्द नहीं आता। जो यहां है वही वहां है। जो शरीर में है वही मन में है। केवल स्थान का भेद है और स्थूल और सूक्ष्म अवस्था का अंतर है। लेकिन जब मन शरीर और मन के मंडलों को छोड़ जाता है और आत्मिक मंडल में सैर करने पर आता है तो वहां प्रत्येक व्यक्ति के चित्त की वृत्ति का पूरा-पूरा निरोध हो जाता है। आत्मा में भिन्नता नहीं है और सब को सुषुप्ति का एकसा आनन्द आता है; क्योंकि सुषुप्ति में यद्यपि अज्ञान, बेसुधी, बेखुदी होती है मगर आत्मिक अवस्था होने के कारण प्रत्येक को एकसा आनन्द प्राप्त होता है। यह कुल बातें जो हमने कही हैं अक्षरशः प्राकृतिक हैं। जिस को थोड़ी सी भी बुद्धि है वह इनकी सत्यता पर विरोध न करेगा।

चित्त की वृति का पूर्ण निरोध अन्तर में होता है। योग का ध्येय मनुष्यों को अन्तरमुखी वृत्ति वाला बनाने का है। जो व्यक्ति जितना अन्तरमुखी होगा, वह उतना ही शान्ति, सुख चैन और आनन्द का उत्तराधिकारी होगा। यहाँ तक कि यदि किसी ने अन्तरमुखी वृति की भली प्रकार कमाई करली है तो वह सुषुप्ति के प्रभाव को जागृत और स्वप्न में भी पैदा कर सकता है और दुनियाँ के कारबार में लगे रहने पर भी उसे

बेचैनी, घबराहट और अशान्ति का भय नहीं रहता। हम किसी को खोल-खोल कर क्या कहें। कुछ पशुओं तक में भी वह शक्ति है कि वे चलते हुये गहरी नींद का स्वाद लिया करते हैं। यदि मनुष्य कमाई करके उसे अपने अन्तर में पैदा करले तो फिर आश्चर्य की कौनसी बात है, मगर उनके लिये क्या कहा जाय जो कठिनाई को ही पसंद करते हैं। वे तो हर सुगम अभ्यास को कठिन बनाकर आराम से बंचित रह जाते हैं। औरों को पथभ्रष्ट करके सत् मार्ग पर नहीं आने देते।

(३) वाह्य अभ्यास वाह्य दुनियाँ में रुचि पैदा करना है बाहरमुखी कर्म बाहरमुखी कर देता है। अन्तर की अपेक्षा बाहरी जगत में अधिक परिवर्तन होता रहता है और परिवर्तनों के प्रभाव सदा ग्रहण करते रहने से हृदय में शान्ति और चैन नहीं आने पाता और वह चंचल हो जाता है। चंचल को सुख नहीं मिलता। वह परेशान हो जाता है। दुनियावी मज़हबों का बाहरी कर्मकाण्ड अशान्ति का कारण होता है। तीर्थ, व्रत, रोज़ा, नमाज़ यह सब बाहरमुखी कर्म हैं। जो नमाज़ की उठक बैठक करेगा, उसे मानसिक आनन्द का लाभ कठिनता से प्राप्त होगा। हां, कुछ व्यक्ति निस्संदेह ऐसे मिलेंगे जो वाह्य प्रभावों की चिन्ता न करके एकाग्रता का लाभ उठाते होंगे, मगर यह दशा सब की नहीं हो सकती। ऐसी विशेषता वाले बिरले होते हैं। उनका यहाँ वर्णन नहीं है। संसार में ऐसे लोग भी तो हैं जो जागते हुये सुषुप्ति का सुख भोगते रहते हैं मगर इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि चित्त की वृति के निरोध की सफलता के लिये वाह्य अभ्यास या बाहरमुखी कर्म अनावश्यक नहीं हैं। प्रारम्भिक अवस्था में उनसे काम लिया जा सकता है, मगर वे इतने लाभप्रद नहीं होते। अन्तरमुखी साधन अन्तरमुखी है और

बाहरमुखी बाहरमुखी है। राधास्वामी मत केवल अन्तरमुखी बनाने का प्रबन्ध करता है।

(५) चौथी बात मालिक की सच्ची पहिचान की बाबत है। उसके विषय में यदि अधिक तर्क वितर्क किया जाता है तो विषय बढ़ जायगा। हम केवल इतना कहने का साहस करते हैं कि किसी ने मालिक को सगुण मान रक्खा है, किसी ने निर्गुण। कोई उसे और कुछ कहता सुनता है। कोई सच्चे मालिक को ब्रह्म और कोई परब्रह्म मानता है। ब्रह्म के तीन रूप शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं-विराट, अव्याकृत, हिरण्य गर्भ। विराट जागृत का, अव्याकृत स्वप्न का और हिरण्यगर्भ सुषुप्ति का अभिमानी है। यदि कोई किसी से यह प्रश्न करे कि तुमने किसको अपना इष्ट माना है तो उत्तर देने में हिचकिचाहट होगी, क्योंकि ब्रह्म के तीनों ही रूप विकारी हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति के विकार से रहित नहीं हैं। अतः जो जिस इष्ट का ध्यान करेगा, उसी के प्रभाव उसमें आयेंगे। यह परिभाषा हिन्दुओं के दार्शनिक लोगों की है। छोटे लोगों का तो उल्लेख ही नहीं है। कोई शिव का उपासक है, कोई विष्णु का और कोई शक्ति का और इसी प्रकार। इनमें से किसी एक को भी समझ नहीं है कि असली इष्ट क्या है और किसे धारण करना चाहिये।

इसी प्रकार मुसलमान सूफ़ियों की भी दशा है। वह सिंहासन पर विराजमान ख़ुदा की डींगें मारते हैं, मगर यह नहीं बता सकते कि वह नासूती हैं या जबरूती हैं; लाहूती हैं या हूती, आदि-आदि। जो त्रुटि हिंदुओं में है वह मुसलमान सूफ़ियों में और भी अधिक है और यह त्रुटि टीका टिप्पणी तथा व्याख्या के बिल्कुल अयोग्य है। क्या हुआ यदि साधन और अभ्यास करने से किसी में गुप्त भेद जानने की, करामात तथा

चमत्कार की योग्यता उत्पन्न होगई ! यह इष्ट पद तो नहीं है। यह भी इष्ट की समझ से अनभिज्ञ हैं।

तीसरा समुदाय कहता है—"मैं परम तत्व, सर्वव्यापक शक्ति को इष्ट बनाता हूँ।" यह और भी ग़लती में पड़ा हुआ है। जहाँ स्थिति (बक़ा) है वहाँ प्रलय (फ़ना) है। जहाँ व्यापकता है वहाँ ही अव्यापकता है। जहाँ अद्वैत है वहाँ ही द्वैत है। जहाँ पूर्ण है वहाँ ही अंश है। यह पक्ष भी द्वन्दावस्था से परे जाने का मार्ग नहीं जानता और एकत्ववादी होने पर भी अद्वैतपने से ऊँचे नहीं चढ़ता। संकेत रूप में हमने केवल इतना बता दिया। समझ वालों के लिये इतना ही काफ़ी है। परिणाम इसका यह है कि इन लोगों में से वास्तव में सच्चे मालिक की पहिचान किसी में भी नहीं है। बात बनाना और है और असलियत तक पहुँचना और बात है। सच्चा मालिक कौन है ? इसका वर्णन इसी पुस्तक में आ जायेगा। इस कारण यहाँ उसका वर्णन नहीं करते।

(५) मालिक के मिलने की युक्ति क्या है ? यह प्रश्न मुख्य और आवश्यक है। समस्त उपदेश धार्मिक रीति-रिवाज की शिक्षा और समस्त धर्म नियम इसी मुख्य प्रश्न के उत्तर के विभिन्न रूप हैं। मगर जब मालिक ही का पता नहीं है तो फिर उसके मिलने का उपाय क्या बताया जाय। फिर भी हम गुरु नानक की वाणी सुना कर उसका संक्षिप्त मगर पर्य्याप्त उत्तर देते हैं। वह यह है:—

जैसे जल में कंवल निरालंब, मुरार्वी निशानिये।
सुरत शब्द भवसागर तरिये, नानक नाम बखानिये॥

नानक साहब स्पष्ट शब्दों में सुरत शब्द योग की कमाई को उससे मिलने का उपाय निश्चित करते हैं; जिसकी सुगम

समझने योग्य और प्रभावित करने वाली शिक्षा राधास्वामी मत देता है।

(६) उसके मार्ग और स्थान क्या हैं? मार्ग और स्थान मनुष्य के अपने घट के अन्दर हैं। बाहर नहीं हैं। उनके नाम प्रत्येक अध्यात्मिक पंथ के यहाँ भिन्न-भिन्न हैं। सूफ़ियों में नासूत, जबरूत, मलकूत, लाहूत, हूत व हूतुलहूत शब्द हैं। हिन्दुओं में भू, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् बताये गये हैं। सन्त मत में सहसदल कंवल, त्रिकुटी, भंवरगुफा, सत, अलख, अगम और राधास्वामी कहे गये हैं। सूफ़ी या हिन्दू शास्त्र सत या सत्यम् तक वर्णन करते हैं। सन्तों ने इसको भी इष्ट नहीं माना। उसका कारण है। इसकी व्याख्या शनैः-शनैः विवरण सहित, जहाँ अवसर आयेगा, करदी जायगी। निष्पक्ष पाठक स्वयं ही अपने अन्तःकरण में इसका निर्णय कर सकेंगे कि राधास्वामी मत की शिक्षा किस सीमा तक सचाई पर आधारित है।

—:o:—

राधास्वामी मत में तीन बातों को अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। उसके सम्बन्ध में सारबचन राधास्वामी की भूमिका में ऐसा लेख आया है:—

"राधास्वामी मत में तीन चीजें दरकार हैं। एक गुरु, दूसरा नाम, और तीसरा सत्संग।"

"और यही तीन चीजें वसीलये[1] उद्धार यानी निजात[2] की हैं।"

"अव्वल गुरु पूरा और सच्चा होना चाहिये यानी संत सतगुरु। वंशावली (खानदानी) गुरुओं से काम नहीं निकल सकता। दूसरे नाम भी सब से ऊँचा और सच्चा और पूरा

(१) सहायक (२) मुक्ति।

और असली यानी जाती चाहिये मय भेद नामी यानी मुसम्मा[1] के। कृत्रिम यानी सिफ़ाती नामों से काम नहीं बनेगा। तीसरे सत्संग भी सच्चा चाहिये और उसकी दो किस्में हैं। एक सत्संग अन्तरीय व दूसरा सत्संग बाहरी। अन्तरी सत्संग यह है कि जब अभ्यासी अपनी सुरत यानी जीवात्मा या रूह को अन्तर में चढ़ा कर सत्पुरुष राधास्वामी के चरनों में लगावे या उस तरफ़ को मुतवज्जह करे। और दूसरा यह कि जब उसको दर्शन और संग सत्पुरुष का जो कि सच्चे व पूरे संत व साधु हैं, नसीब होवे और यह उनके बचन सुने और दर्शन करे और जो सेवा बन सके करे। इन दोनों किस्म के सत्संग से कोई दिनों में हालत बदलती हुई साफ़ मालूम होगी।"

—:o:—

इन वाक्यों के अन्दर पांच-सात बातें हैं जिन पर सोच-विचार करना आवश्यक है:—(१) गुरू और गुरू भी सच्चा (२) नाम और नाम भी सच्चा (३) नाम व नामी का भेद (४) सत्संग और सच्चा सत्संग (५) अन्तरीय सत्संग (६) बाहरी सत्संग (७) सत्पुरुष राधास्वामी का आदर्श। जब तक यह सब बातें भली भांति समझ में न आ जांय, सन्तमत की असलियत का ज्ञान होना कठिन है।

गुरू, नाम और सत्संग:—ये संतमत के तीन स्तम्भ हैं। यह संतमत का त्रिपुटीवाद कहलाता है। जहां कहीं आध्यात्मिक शिक्षा के दिये जाने का सिल-सिला चल रहा होगा, वहां यह तीनों बातें मौजूद होंगी। इनके बिना काम कभी नहीं चल सकता।

गुरू वह है जो अन्धकार में प्रकाश की सूरत पैदा कर दे। अन्धेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझता और जब आँखों

(१) नाम वाला।

पर पट्टी चढ़ी हो तो कोई क्या देखेगा और क्या समझेगा।

यह जगत अन्धकार है। घटाटोप अन्धेरा छाया हुआ है। जीवात्मा इसमें बेबश रहते हैं या टटोल-टटोल कर चलते हैं। दोनों दशायें दुःखदायी हैं। बेबशी पाप है। टटोल कर चलना कष्ट है। इसके अतिरिक्त यह भी तो नहीं मालुम होता कि हम जा किधर रहे हैं। सम्भव है मार्ग में कुँआ हो और उसके अन्दर मुंह के बल गिर पड़ें। यदि ऐसा न भी हो तो अज्ञान स्वयम् ही महा दुखदायी दशा है।

हम में से बहुत कम आदमी हैं जो प्रकृति और सृष्टि के भेद को जानते हैं। यह क्या है? इसका कारण क्या है? क्यों यह रचना रची गई? आया इसके गोरखधन्धे में फंसे रहने में भलाई है या इससे छुटकारा पाने में अच्छाई है? हम स्वयम् क्या है? हमारा इस रचना से क्या सम्बन्ध है? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर सिवाय सच्चे गुरु के कोई नहीं दे सकता। यदि अन्य प्रकार से उत्तर मिलता भी है तो वह संतोषजनक सिद्ध नहीं होता।

यदि कोई व्यक्ति किसी धार्मिक ग्रन्थ को दिखलाते हुये उसको इन प्रश्नों के उत्तर का आधार बताता है तो ग्रन्थ स्वयम् जड़ और निर्जीव वस्तु हैं। ग्रन्थों के साथ चाहे प्रेम हो मगर असली और सच्ची सहानुभूति उत्पन्न नहीं हो सकती, और वह किसी जीवित पुरुष द्वारा व्याख्या चाहती हैं। इस कारण से जिस मनुष्य को थोड़ा भी आत्मिक पथ पर बढ़ने का दर्जा प्राप्त हो चुका है, इनकी ओर से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। सच्ची सन्तुष्टता तो वही दे सकता है जो हमारी तरह रंग-रूप, भाव और विचार वाला हो। यदि उसके साथ हमको प्रेम और सहानुभूति है तो उसकी एक एक बात सरलता से हमारे हृदयांकित हो जाती है और हमारी अवस्था बदल जाती है।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

ख़ानदानी (वंशावली) गुरुओं की दुनियां में कमी नहीं है लेकिन उनका व्यवहार, अमली जीवन और लोक परलोक की पूजा के स्वार्थमय कार्य हमको पग-पग पर चौकन्ना और सावधान बनाते रहते हैं। हम हज़ार प्रयत्न करें मगर मन को क्या करें, यह तो अपनी जैसी करता ही रहेगा। हम हज़ार इस मन को शान्त करें मगर यह मानने वाला कब है। अ.ज सम्भव है यह किसी प्रकार दबा दिया जाय, मगर कल फिर उभर खड़ा होगा। सहस्रों ही प्रकार के विरोध और खंडन के उदाहरण प्रस्तुत करने से मानेगा नहीं। इस कारण अति आवश्यक है कि कोई ऐसा पुरुष हमको मिल जाय जिसमें पूर्ण मनुष्यता के साथ-साथ आत्मिक तेज और प्रकाश हो। वह निःस्वार्थ हो। उसका अमली जीवन बिना कहे सुने मशाल (रोशनी) बन कर अन्धकार को दूर और प्रकाश को समीप करता चले। तब ही जाकर विश्वास की फुरना होगी। ऐसे पूर्ण पुरुष को गुरु कहते हैं, और उसके रूप का दर्शन पाना आवश्यक है।

(२) वह जब प्राप्त होगा, सच्चा नाम देगा। **नाम स्वयमेव क्या है?** यह अध्यात्म (रुहानियत) का तत्व है। पुस्तकों में हज़ारों ही नाम हैं। आदमी किस-किस को मन दे। यह नाम स्वयम् भ्रम की दशायें पैदा करेंगे; क्योंकि ये नाम अधिकतर कृत्रिम (सिफ़ाती) है। निज नाम (ज़ाती) नहीं हैं। कृत्रिम नाम गुणों के बँधाव में या घेरे में जकड़े रहते हैं। गुण में सीमितपना है। परिपूर्णता नहीं है। सीमितपना नुक़्स (अपूर्णता) है। नुक़्स कष्ट पैदा करने वाला होता है। यह कारण है कि कोई पुस्तकीय वर्णित नाम मुक्ति का सामान पैदा नहीं कर सकता; क्योंकि वह जब सुना जायगा वह एक ही प्रकार के विचार और भाव को पैदा करेगा। गुरु जो नाम देंगे वह कृत्रिम नहीं होगा बल्कि ज़ाती अर्थात् निज नाम होगा

और कमाई किये जाने के कारण से उसके अन्दर परिपूर्णता के सारे गुण मौजूद होंगे। बात सब ही कहते हैं मगर स्वयम् आचरण करने वाले की बात दिल को लगती है। विद्वान की बात इस कान से सुनी उस कान से निकल गई और प्रभाव हीन रही। यह बात हर जगह देखने में आती है। बुद्धिमान और अज्ञानी एक ही प्रकार की बातें करते हैं। एक में तो असर रहता है, दूसरे में असर नहीं होता। गुरु के नाम में उनकी कमाई शामिल रहती है इसलिये जो निज (ज़ाती) नाम गुरु से मिलता है। उसमें विशेष प्रकार का रासायनिक प्रभाव होता है। इस कारण से उसकी बरकत और प्रभाव विशेष प्रकार के होते हैं। वाह्य नाम और रूपका संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया।

(३) नाम और नामी के भेद का ज्ञानः—यह अत्यन्त आवश्यक बात है कि जब नाम मिल गया तो नामी की तलाश मुख्य है मगर यहां एक रहस्य है जिसका हृदयांकित करा देना परमावश्यक है। मानलो गणित विद्या है। जो व्यक्ति गणित जानता है और गणित में निपुण है, तुम उसे गणितज्ञ कहोगे या नहीं? गणित जानने वाला सदा गणितज्ञ कहलायेगा। इसी प्रकार नाम का जानने वाला या नाम का रखने वाला ही नामी कहलायेगा। बात मोटी है और बारीक भी है। जो लोग समझ रखते हैं उनके लिये तो साधारण है और जो अनसमझ है उनके लिये असाधारण है। नाम गुरु में है और नाम गुरु का है इसलिये गुरु की ज़ात (व्यक्तित्व) को नामी मानने में कोई हानि नहीं है। लेकिन खोज अभी तक समाप्त नहीं होगई।

यदि नाम मिल गया और नामी का प्रत्यक्ष रूप दिखाई भी दे गया तो उसी पर ठहर जाना और संतोष करना अच्छा नहीं है। नामी के रूप की खोज अपने अन्दर करनी चाहिये यह आध्यात्म (रूहानियत) के नाम की दूसरी सीढ़ी है। पानी में

चन्द्रमा की सूरत दिखाकर किसी ने तुम्हें बता दिया कि यह चन्द्रमा है। वह वास्तव में चन्द्रमा है। उसके चन्द्रमा होने में कोई संशय नहीं है लेकिन वह अन्त में जल में और पृथ्वी पर दिखाई देने वाला चन्द्रमा है। इसको देखकर दृष्टि को ऊँची करके आकाश के चन्द्रमा को देखने की आवश्यकता है। जब तक वह न देख लिया जायगा, असली सन्तुष्टि न होगी; क्योंकि पानी के अन्दर जो चन्द्रमा है वह प्रतिबिम्ब है और ऐसे चन्द्रमा अनेकानेक दृष्टिगोचर हो सकते हैं। उनका दृश्य फिर भी भ्रम उत्पन्न करने वाला हो सकता है। इस कारण से दृष्टि को आकाशी बनाकर ऊपर की तरफ़ भी देखने की आवश्यकता है। जिस समय वह दिखाई दे जायगा अपने आप विश्वास हो जायगा कि चन्द्रमा वास्तव में एक ही है। अवसर की ऊँचनीच, समीपता और दूरी के कारण पानी में बहुत से अक्सी चन्द्रमा बन जाते हैं। आकाश पर असली चन्द्रमा एक है और पृथ्वी पर नक़ली और अक्सी अनेक चन्द्रमा हैं। इस प्रसंग का भी निर्णय करना मसलहत है।

बहुत अच्छा! आकाश का चन्द्रमा दिखाई देगया। उसका दृश्य भी देख लिया गया। नाम के प्रताप से नामी भी मिल गया अब इसमें कोई संशय बाकी नहीं रही। लेकिन क्या रुहानियत (अध्यात्म) की यहीं तक समाप्ति है? नहीं, अभी आगे और चलना है। इस अंतरीय आसमानी चन्द्रमा से (नूर) प्रकाश उत्पन्न करो और स्वयम् भी प्रकाश जैसे बन जाओ ताकि दुई का ज्ञान दूर हो जाय और तुममें और इसमें थोड़ा भी दुई का दोष न रहे।

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम की, जित देखूँ तित तूँ॥

यह नाम और नामी का भेद है जो यहाँ संक्षेप में समझाया गया है। यह एकत्व और एकत्व वाद का इत्र है। यहां आकर अद्वैत के रहस्यों की समाप्ति हो जाती है।

(४) लेकिन यह अवस्था आये किस तरह से? नाम भी सुन लिया और नामी का प्रत्यक्ष दर्शन भी हो गया। इसका उपाय सत्संग है। गुरु की संगत ग्रहण करो। उसकी सेवा में बैठो। उसके बचनों को सुनो ताकि भावनाओं में उभार पैदा हो। वह ठीक इसी तरह है जैसे चन्द्रमा का नाम सुनकर जल का चन्द्रमा देख लिया। अब वही चन्द्रमा अपने तत्व का दृश्य दिखा दिखाकर कर ऊपर की ओर दृष्टि करने का आदेश कर रहा है। इसी आदेश को सत्संग के बचन कहते हैं। सत्संग का अर्थ है सत का संग। सत्संग परस्पर मिल बैठने को नहीं कहते बल्कि सत स्वरूप की संगत सत्संग कहलाती है सतपुरुष ही का संग सत्संग है। दूसरा नहीं है। जब तक हृदय में ऐसा विश्वास न हो लेगा, असली संगत की बरकत व्यर्थ रहेगी और लाभदायक न होगी। यही सच्चा सतसंग है।

(५) बाहरी सत्संग—गुरु की संगत को कहते हैं। इससे यह लाभ होता है कि जिस समय वह प्रवचन कहते हैं, हृदय के समुद्र में आत्मिक भावों की लहरें उमड़ने लगती हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि प्रभावशाली उपदेशक का बचन दिल में उमंग उत्पन्न करता है और श्रोता को उसका लोहा मानना पड़ता है। अतः जब बार २ उच्च कोटि के प्रभावशाली गुरु के बचन सुने जायेंगे तो वह अपना प्रभाव क्यों न करेंगे। अग्नि के पास बैठने से गर्मी आती है। जल की समीपता तरावट देती है। जब इन तत्वों का यह प्रभाव है तो फिर गुरु में अध्यात्म (रुहानियत) का प्रभाव क्यों न होगा! अध्यात्म के

धारण और प्राप्त करने के लिये यह बाहरी सत्संग अत्यन्त आवश्यक है।

जिन कीन्हा सतगुरु का संग। सत्पुरुष का पाया रंग॥
बन्दगी भजन करे सौ बरसा। गुरु का संग दो घड़िया बड़का॥

(६) अन्तरीय सत्संग—यह अभ्यासी को अपने अन्दर प्राप्त होता है। साधन और अभ्यास के सिलसिले में वह अपने अन्दर उसी दृश्य को देखता है जो उसने बाहर देखा है। नाम उसके अन्दर है। नामी भी उसके अन्दर है। बाहर कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। वह जरा इसे करके देखे तो उसे आप पता लग जायगा। इस प्रकार बाह्य साधन करके अभ्यासी अपने अन्दर की ओर रुजू होगा। उसे बुन्द में समुद्र लहराता हुआ मिलेगा और अणु २ में चमक-दमक के साथ प्रकाशवान सूर्य्य दृष्टिगोचर होगा। ध्यान के साधन से उसके भावों को इतनी गति और उभार मिलेगा कि वह मग्न, लीन और बेसुध होता चलेगा। तन्मयता की दशा आजायेगी और चूं चरां की आवश्यकता न रहेगी।

(७) सत्पुरुष राधास्वामी दयाल का दर्शन—जब-तक आदर्श, आइडियल या इष्ट दृष्टि के सामने न हो तब तक अनाप-शनाप कारवाई करना व्यर्थ होता है। इष्ट को समझ-लेना पहिले ही मुख्य है। हुजूर मोअल्ला ने राधास्वामी का इष्ट बताया है और इसी को सबसे ऊँचा इष्ट ठहराया है। यह क्या है? राधास्वामी योग का पठन-पाठन इसे अपने आप सुगमता से हृदयांकित कराता जायगा। रूहानी (अध्यात्मिक) मरहलों के संक्षिप्त वर्णन में हमने इसको सूक्ष्म रूप से लिख दिया है। यह सूफ़ियों के हूतुलहत, वेदान्तियों के परब्रह्म और शुद्ध चेतन और योगियों के सत्यम् पद से ऊँचा है। जहाँ वाणी

और मन का गम नहीं है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हाँ, वाह्य सत्संग के वचन और अंतरीय सत्संग के नियम पूर्वक अभ्यास से इसका आप ही आप अनुभव हो जाता है। उस समय आप ही प्रतीत होने लगता है कि हुजूर महाराज की तालीम कितनी ऊँची और श्रेष्ठ है।

सार वचन राधास्वामी नज़्म में लिखा है—"और जो और काम परमार्थी किस्म के हैं मसलन तीर्थ, व्रत और मन्दिर और मूरति और पोथियों का पाठ और जप और सुमिरन सिफ़ाती नाम का, इन कामों की करनी से ज़रा भी हालत नहीं बदलती; क्योंकि इन कामों में निज मन और जीवात्मा यानी रूह जिसको संत सुरत कहते हैं शामिल नहीं होते। और इसी सबब से इन कामों का असर ज़ाहिर नहीं होता। अलबत्ता ज़ाहिरी अहंकार वगैरा दिल में आ जाते हैं।"

यह शब्द इतने स्पष्ट हैं कि अधिक व्याख्या आवश्यक नहीं है। धार्मिक कर्म करने वालों की दशा स्वयं उनके मन की दशा का दर्पण बन रही है। उम्रें बीत जाती हैं और परिणाम कुछ नहीं होता। जो काम जीवन के प्रारम्भ से किया गया वह अन्तिम जीवन तक चालू रहता है मगर शान्ति प्राप्ति नहीं, आत्मज्ञान नाम को भी नहीं। क्या यह ग़लत है? अपने इधर-उधर देखो। किसी के कहने पर न जाओ। राधास्वामी मत खंडन करने का मार्ग नहीं है। न उसको किसी मज़हब के खंडन या झुठलाने से गरज़ है। यहाँ जो कुछ कहा जाता है केवल दृष्टि के ऊँचा करने, विचार को गति देने, बुद्धि को सूक्ष्म बनाने और मन को विस्तृत बनाने का उद्देश्य है ताकि समझने वाले समझें, सोचने वाले सोचें और आत्मज्ञान के जिज्ञासू आत्मिक बनने का यत्न करें।

मगर यहाँ एक रहस्य है जिसके जताये बिना आगे बढ़ना

ठीक नहीं है। वह यह है कि प्राचीन महा पुरुषों ने जो धर्म की यह अवस्थायें चलाई थीं उनका भी उद्देश्य यही था कि किसी प्रकार साधारण जप तप करते रहने से मनुष्य समय पर अन्तर-मुखी बन जाय। यह केवल प्रारम्भिक लोगों के लिये है मगर लोग शुरू से अन्त तक उसी प्रारम्भिक दशा में बने रह गये। अन्तिम श्रेणी तक पहुँचने वाला एक भी नहीं होता है और न किसी प्रकार के कर्म धर्म का परिणाम श्रेष्ठ फल वाला होता है। यह दशा शोचनीय है।

इसका कारण और कुछ नहीं है। यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह प्राकृतिक रूप से नवीनता प्रिय है। तुम नई २ बात सोचो, नये २ काम करो, नया वस्त्र पहिनो, नया पदार्थ खाओ पीयो, मन प्रसन्न होता रहेगा। लेकिन जब आदत पड़ जाती है तब फिर इनमें से कोई भी न प्रसन्नता देता है न स्वादिष्ट प्रतीत होता है। जी भरा नहीं कि मन उनसे उकताया नहीं। सन्तुष्टता होने पर अरुचि हो जाती है और उन्नति रुक जाती है। यही कारण है कि इन साधनों और क्रियाओं के करने वाले इनकी ओर से अन्त में घबरा जाते हैं। केवल स्वभाव और रिवाज की प्रथा के कारण अथवा समाज के भय से उनमें अटके पड़े रहते हैं। किसी को एक प्याला शराब पिलाओ, उसमें मस्ती आजायेगी; लेकिन कुछ दिनों के पश्चात् जब वह साधारण सी हो जायगी फिर मस्ती का आनन्द अपने आप जाता रहेगा। अब या तो वह उसके परिमाण को बढ़ाता चले या अन्य प्रकार के सरूर की ओर झुके तब काम निकले मगर ऐसा नहीं किया जाता। यद्यपि यह भद्दा उदाहरण है मगर हमारे मन्तव्य को हृदयांकित कराने में सफल समझा जायगा। यह दशा सारे मज़हबों की हो रही है। उन्नति के उपायों को कोई नहीं जानता और आँतरिक भावों का पतन हो जाता है।

इसके विरुद्ध योगियों ने भू भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यम् के अध्यात्मिक स्थान बताकर इनको उन्नति का राज मार्ग दिखा दिया मगर लोग अनभिज्ञ हो गये और वह विद्या अनउपयोगी बना दी गई। यदि इसी का अभ्यास चालू रहता तब भी लाभ होता, मगर कठिनाई तो यह है कि किसी को इनका ज्ञान तक नहीं कि इनका अभिप्राय क्या है। लोग प्रतिदिन गायत्री का पाठ करते समय प्राणायाम का यह मंत्र पढ़ते हैं, मगर समझ-बूझ खाक नहीं है। राधास्वामी मत उन्नति का साधनहै। वह बतलाता है--"किसी एक स्थान पर न ठहरो वर्ना काम न बनेगा। चले चलो, बढ़ते चलो और बिना ध्रुव पद तक पहुँचे हुये चैन न लो और तुम्हारी पहुंच इष्ट पद तक हो जायगी।"

सहस कँवल दल डेरा डालो, जोत में जोत मिलाओ।
जोत निरंजन जोती झलके, घंटा शंख बजाओ॥ १॥
जोत शब्द की निरख परख में, गुरु का ध्यान लगाओ।
मेघा बरसे बिजली चमके, अमृत धार नहाओ॥ २॥
बिन जल बूंद पड़े जहां भारी, न्हाय २ तृप्ताओ।
रिमझिम-रिमझिम बादल बरसे, मेघनाद चित लाओ॥३॥
चाँद सूर्य बिन जहाँ उजियारा, सो प्रकाश लखि धाओ
मोती पोहो गगन मंडल में, बिन सुर शब्द सुनाओ॥ ४॥
त्रिकुटी जाय 'सोम' रस पाओ, पियो अमीरस सारा।
यह निज वेद श्रुति स्थाना, मूल कलाम विचारा॥ ५॥
यह पद जब कोई साधू परसे, दरसे सत ओंकारा।
प्रणव शब्द सुन मंगल गावे, यह है गुरु दरबारा॥ ६॥
सेत बन्द रामेश्वर सागर, ब्रह्मानाद चिकारा।
मेघनाद इन्द्रिय जित रावन, मार करो संहारा॥ ७॥

त्रिकुटी छोड़ चलो आगे को, सुन्न महासुन्न झारा।
अटल समाधि की तारी लागी, सो पद दसवां द्वारा ॥ ८ ॥
गढ़ कैलाश ब्रह्मरेन्द्र की चोटी, मान सरोवर धारा।
हंस निरंतर मोती चूगे, पुरुष प्रकृति विहारा ॥ ९ ॥
सुन्न छोड़ सोहंग पद आवे, भंवर गुफा की खिड़की।
मुरली बजे सोहंगम धुन में, सहजहि बिजली कड़ की ॥ १०
सोहं-सोहं हंस की बाणी, सोहं उल्टा हंसा।
जो कोई मरम गुरु का पावे, सुफल तासु शुभ बंसा ॥ ११ ॥
सत पद बीन सुनी लौ लाई, सत्त पुरुष घर बासा।
देखा रूप अगाध अपारा, अद्भुत अजब तमाशा ॥ १२ ॥
अलख अगम के पार ठिकाना, राधास्वामी धाम समाने।
मन बानी की गम नहिं जामें, समझ-समझ हरषाने ॥ १३॥
जा पर दया गुरु की होई, सो पहुँचे दरबारा।
राधास्वामी राधास्वामी छिन-छिन भाषे, राधास्वामी
अगम अपारा ॥ १४ ॥

फिर उसी पुस्तक से उधृत् है:—

"सुरत यानी जीवात्मा या रूह जो खास सत्पुरुष राधास्वामी की अंश है, इस देह में एक बड़ा जौहर है कि जिसको ताक़त से कुल बदन और मन और इन्द्रियाँ वगैरह वगैरह अपना काम देती हैं।

सो संतों ने इसी जौहर को छाँट करके उसके असली भंडार और खज़ाने की तरफ मुतवज्जह किया और इसकी सच्ची तवज्जह उधर को हुई। तब आहिस्ता-आहिस्ता इसकी हालत भी बदलती जाती है और दुनियां और इसके पदार्थ रोज़-बरोज़ नज़र में ओछे और हक़ीर दिखाई देते हैं। इस जौहरे लतीफ़ का असल मुक़ाम क़याम यानी ठहराव का पिंड यानी जिस्म में आँखों के पीछे है। और वहाँ से यह

तमाम देह में फैला है और सब ऐज़ा को ताक़त दे रहा है। इसका भंडार और खज़ाना आदि शब्द यानी आदि नाम है।"

राधास्वामी मत के त्रय स्तम्भों का संक्षिप्त वर्णन करके अब सत पद के पर्दे खोलने की कोशिश की ओर दृष्टि है। (१) सुरत और (२) उसके असली भंडार की ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

वेदान्त जिसको आत्मा अथवा जीवात्मा कहता है और सूफी जिसे रूह कहते हैं, संत मत में उसके लिये ख़ास शब्द 'सुरत' गढ़ी गई है। आत्मा और रूह दोनों यद्यपि इसकी असलियत को प्रगट नहीं करते मगर श्रेष्ठ शब्दों के न होने पर विवश इन्हीं पर निर्भर होना है। शब्द तो शब्द ही हैं। अर्थ की ओर यदि ध्यान रहे तो ग़लती कम होती है। संतों ने अपनी समझ में उन शब्दों से बेहतर शब्द 'सुरत' गढ़ा है। सुरत तवज्जह को कहते हैं। प्राकृतिक जगत में तवज्जह ही सबसे से बढ़कर तत्व (जौहर) है। यही सबका इत्र है। जब तक तवज्जह का झुकाव अन्य वस्तुओं की ओर है तब तक सुख-दुख और बन्धन है। जब तवज्जह का झुकाव निज स्वरुप (ज़ात) की ओर, अपनी ओर अथवा निज भंडार की ओर होता है तब उसमें उच्च कोटि का आनन्द, बेपरवाई और निज रूपता आ जाती है। यह सब गुण उसमें पहिले से ही विद्यमान हैं, मगर भ्रम, धोका अथवा उसके स्वम् स्वाभावतः किसी अन्य ओर आकर्षित होने से वह आवरण में अटक कर कुछ की कुछ प्रतीत हो रही है। संत मत में केवल इसी एक तत्व की छान बीन अध्ययन और उसके रुख को असलियत की ओर फेरने का यत्न किया जाता है। इसी एक शब्द पर भली प्रकार ध्यान देने, ध्यान करते रहने और ध्यान करने के परिणाम से मिल रहने में उसकी समझ आ जाती है। इसी का नाम ज्ञान,

और इसी के काम को कर्म, और इसी की असलियत से सम्बन्ध जोड़ने को भक्ति कहते हैं। यह सुरत ही है जो सृष्टि की व्यवस्था, शरीर की व्यवस्था और अध्यात्म व्यवस्था में अपनी शक्ति और श्रेष्टता का खेल दिखा रही है। यह बुरे से बुरे काम को शानदार और बड़ा बना देती है। कुरूप को रूपवान कर देती है। जो कुछ यहाँ है वह सुरत और तवज्जह ही से है और उसी का तमाम पसारा है। सम्भव है लोग अपनी अनसमझी से इसको मन समझ लें, मगर यह मन नहीं है। यह उससे भिन्न है। मन उसके काम का हथियार है। वह मन की चोटी पर रहती है। साधारण आत्म विद्या की फिलोसफी इस पर प्रकाश नहीं डालती; क्योंकि उसकी पहुँच या विस्तार केवल मन ही तक है। इसलिये इसे भली प्रकार समझ करके तब संत मत के अध्ययन की ओर ध्यान देना चाहिये जब तक यह समझ में न आयेगी तब तक असलियत के भेद का मिलना भी कठिन है! इस सुरत की समझ केवल एक शब्द 'तवज्जह' पर निर्भर है, यद्यपि 'तवज्जह' भी अधिक स्पष्ट शब्द नहीं कहा जाता। 'तवज्जह' को जन साधारण की बोल-चाल में एकाग्रता, यक दिली, एकचित और यक रुखी कहते हैं और यह ग़लत नहीं है मगर वह इससे कुछ भिन्न है और सबका तत्व है। यह सुरत हमारे शरीर में दोनों आँखों के पीछे रहती है। इसको शाक्त और शैव तीसरा तिल, शिव नेत्र और रुद्र की तीसरी आंख कहते हैं। सूफ़ियों के यहाँ इसी को 'नुक्ता सवेदा' कहते हैं, और यही यहाँ उसके ठहराव का स्थान है। वह यहाँ रहकर अपनी मनोवृत्ति द्वारा कुल देह में फैली हुई है। इस दृष्टि से शरीर के अन्दर सर्वव्यापक कहलाती है। आँख इन्द्रियों के सिलसिले में बीच की वस्तु है। यही बीच

वाली वस्तु ऊपर और नीचे इसी भौतिक मंडल से प्रभावित रहती है।

यहां कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने का भय है। अब तक लोग आत्मा को किसी खास स्थान पर रहने वाला नहीं मानते और न उसका स्थान नियत करते हैं। लेकिन सृष्टि के व्यवहार में हम हर जगह देखते हैं कि जो वस्तु व्यापक है वही घिरी हुई भी है। एक स्थान पर अपने मंडल में स्थिति भी है और सर्वव्यापक भी है। एक स्थानी होती हुई वह सर्व स्थानी भी है। सूर्य्य का सूर्य्य मंडल में विशेष स्थान है और किरणों द्वारा वह अपने मंडल में फैला हुआ भी है। तमाम प्राकृतिक शक्तियों की हर जगह यही दशा है। यहां तक कि अगर इस शरीर की इन्द्रियों की शक्ति पर ध्यान दिया जायगा तो इन्हें भी एक स्थानी और सर्व स्थानी मानना पड़ेगा। दीपक एक कमरे में प्रकाशित है। वह है तो एक ही जगह मगर उसका प्रकाश तमाम कमरे में फैला हुआ है। और भी इसी तरह समझ लो। इसी प्रकार दिव्य शक्तियों का भी हाल है। विराट पुरुष विराट मंडल में एक स्थानी और सर्व स्थानी है। ब्रह्म भी ब्रह्म मंडल में एक स्थानी और सर्व स्थानी है। जब सब की यही दशा है तो 'सुरत' की क्यों न होगी? तत्व अर्थात् पंच स्थूल महाभूत--आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तक में व्यापक और घिरे हुये होने की विशेषता है।

हमारे पाठकों को चाहिये कि जब तक कि इस 'सुरत' के विषय को भली प्रकार न समझलें तब तक आगे न बढ़ें। हम गोल-मोल या अस्पष्ट शब्दों में बात चीत नहीं करते। न झूंठे झमेले के फंदे में फंसाते हैं। यहां जो कुछ कहा जाता है बिल्कुल साफ़-साफ़ और सीधा-सादा। हां! यदि हमारा लेख किसी की समझ में न आवे तो वह दूसरी बात है। समझाने का

प्रयत्न हम अवश्य करते हैं। हमारे ख्याल में इस 'सुरत' का महत्व समझे बिना वेदान्त जैसे दार्शनिक रहस्य पर भी पार पाना असम्भव है। वेदान्ती सर्व व्यापक का बिना समझे बूझे ध्यान करते हुये अपने आपको ब्रह्म मान कर चुप और संतुष्ट हो रहते हैं। यह सच है कि इनके मानसिक भाव अवश्य ऊंचे हो जाते हैं मगर तत्व-विवेक में कमी रह जाती है और काम ज्यों का त्यों नहीं बनता। हम स्वयम् एक प्रकार से वेदान्ती हैं। वेदान्त विषय पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। हमारी वेदान्त की पुस्तकें फिलोसफी (दर्शन) की सूखी हड्डियाँ नहीं हैं बल्कि अत्यन्त मनोहर और रसीली हैं। हमने वर्षों वेदान्त के रहस्यों के समझने में व्यतीत किये हैं और उनकी व्याख्या की है किन्तु हम स्वयम् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि 'सुरत' के समझ लेने ही से वेदान्त की अच्छी और पक्की समझ आजायगी।

हमने बताया है कि 'सुरत' का स्थान हमारी दोनों आंखों के पीछे है। अब इस पर ध्यान पूर्वक विचार करो। यह तो सब को ज्ञात है कि शरीर की असली शक्ति 'सुरत' या पिंडी आत्मा में है लेकिन यह किसी के भी न हृदयांकित है और न कराया जाता है कि सुरत का स्थान इस शरीर में कहां है। संतों ने वह स्थान बताया है और तुम आप भी ध्यान पूर्वक देखो कि यह ठीक है या ग़लत है। जब तुम पर किसी प्रकार का कष्ट आता है अथवा कोई परिश्रम का कार्य्य सुपुर्द किया जाता है तो क्या करते हो? क्या तुम आंखों को बन्द नहीं कर लेते और क्या उसी स्थान पर तवज्जह को स्थित करके किच-किचाते हुये वहां से मदद नहीं लेते? किसी लड़के को पत्थर उठाने का काम दिया गया। पत्थर भारी है। उठाये नहीं उठता। मगर लोगों के उत्साहवर्द्धक शब्द को सुन कर जब

वह पत्थर को हाथ लगाता है, आंखों को बन्द करके उसी स्थान पर सुरत को जमाता है और उसी जगह सुरत के एकाग्र और स्थिर हो जाने या ठहर जाने से उसके हाथों में शक्ति आजाती है। वह पत्थर को सरलता से उठाकर फेंक देता है। यह एक साधारण उदाहरण है जिसको तुच्छ बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है। लड़का जानता नहीं मगर अनजाने सुरत से काम लेता है। यह हर प्राणी का प्राकृतिक कर्म है। इसी प्रकार जब सोचने समझने का समय आता है, तो इसी क्रिया या विधि को काम में लाना पड़ता है। अध्यापक ने विद्यार्थी को गणित का कोई कठिन प्रश्न दे दिया। वह सोचने लगा। सोचते सोचते आँखें बन्द होगईं। उस स्थान पर पहुंचकर चित एकाग्र होगया और उसने प्रश्न को हल कर डाला। यह काम तुम स्वयम् भी करते हो। हाँ, इसके भेद के ज्ञाता नहीं हो। सब ऐसा ही करते हैं। पशुओं तक में यह विशेषता मौजूद है। लेकिन प्रकट रूप से इसका ज्ञान किसी को भी नहीं है। वर्तमान विज्ञान और चिकित्सा का ध्यान अभी इस ओर नहीं गया है लेकिन अँग्रेजी डाक्टर तक इस तीसरे तिल के महत्व को स्वीकार कर चुके हैं। यह स्थान 'सुरत' की बैठक का है। केवल इतना ही तुमको समझाना है। चूंकि यहाँ से ही राधास्वामी मत के सुरत शब्द योग का अभ्यास प्रारम्भ कराया जाता है इस कारण से और भी आवश्यक है कि परमार्थ और आत्मज्ञान के जिज्ञासू इसे समझलें। सुरत के एकाग्र करने का यह काम केवल जाग्रत ही में नहीं किया जता; किन्तु स्वप्नावस्था में भी यह अनजाने में होता रहता है। सोते समय भी स्वप्नावस्था में बहुधा गूढ़ रहस्य हल हो जाते हैं। यहाँ तक सुरत की व्यवस्था संक्षेप में हो चुकी।

(२) इस सुरत का भंडार इसी तुम्हारे शरीर में है। वह पूर्ण भंडार है। यह सुरत अंश हैं। जब तक सुरत की दृष्टि अंशों पर है तब तक उसे आंशिक दुख सुख प्रतीत होता रहता है। जब उसकी दृष्टि कुल या भंडार की ओर चली जाय तो फिर वह दुख सुख से परे हो जायगी। इसका भी समझना अत्यन्त कठिन है। मगर हम अपने तौर पर बिना समझाये बुझाये मानने वाले कब हैं। भंडार की ओर रुझान होना भी स्वाभाविक कर्म है और इसी कारण से हम सुरत शब्द योग को प्राकृतिक साधन कहते हैं। तुम देखते हो कि जब कोई व्यक्ति कोठे से गिर पड़ता है, घाव हो जाता है या चोट लग जाती है तो अनजाने हुये उसकी सुरत मस्तिष्क की ओर खिंच जाती है, शरीर की ओर से ध्यान हट जाता है और बेपरवाई आ-जाती है। शरीर अचेत और अचल पड़ा है। घायल को घाव या चोट का भान तक नहीं है। वह बेहोश है। इस बेहोशी को न सुख कह सकते हैं न दुख; किन्तु वह एक ऐसे आनन्द की अवस्था है जिस पर दुख सुख की पहुँच भी नहीं हो सकती। क्या कोई उसे वर्णन कर सकता है? अब तक बहुत कम लोग ऐसे मिलेंगे जो इस भेद की व्याख्या कर सकेंगे। बात यह होती है कि चोट के लगते ही सुरत की धार ऊपर की ओर खिंच जाती है, जहां देह का भान नहीं है और दुख-सुख कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इन्द्रियों को स्वाद अच्छा लगना सुख है और स्वाद बुरा लगना दुख है। वहां इन्द्रियों की व्यवस्था नहीं है। यह दशा आती तो सब प्राणियों पर है और सबको थोड़ा बहुत इसका तजुर्बा है मगर जानता कोई नहीं है। डाक्टर, हकीम और वैद्यों तक को भी यह भेद मालुम नहीं है और न वे इसकी व्याख्या कर सकते हैं। धार ऊपर की ओर खिंच जाती है। इससे तो किसी को भी इन्कार न होगा; क्यों-

कि जिस समझ बूझ वाली चेतन्य शक्ति से नस व नाड़ियों की गति का काम हो रहा था वह वहाँ से लुप्त सी दिखाई पड़ती है। यदि लुप्त न हुई होती तो वह अपनी दशा को वर्णन करती। मगर जब वह वहाँ नहीं है तो वर्णन कौन करे उसका ठहराव तो अब किसी और ही स्थान पर है। वह अपने भंडार की ओर झुक गई। वह कहां चली गई? अपने भंडार में पहुँची अथवा भंडार के नीचे के स्थानों में? इसका पता हम यहाँ नहीं देते। केवल एक साधारण उदाहरण देकर ख़ामोश होते हैं क्योंकि अभी हम को राधास्वामी योग की किताब में बहुत कुछ लिखना है।

(३) इस भंडार की ओर तवज्जह केवल ख्याल की सहायता से दिलाई जाती है। यही विचार कराना सतगुरु का उपदेश कहलाता है। राधास्वामी मत का सत्संग केवल ख्याल दिलाने से सम्बन्ध रखता है। इस मत में न कठोरता है न सख्ती, न जोर है न जुल्म। जिस का जी चाहे सत्संग में आकर गुरु से सच्चे ख्याल ले और उनके अभ्यास में लग जाय। ख्याल का प्रतिदिन का अभ्यास उसके विश्वास को दिन प्रति दिन दृढ़ करता चलेगा और जब वह अपनी आँखों से देख लेगा, फिर सम्भव नहीं है कि कोई लोक या परलोक की शक्ति उसे बहका सके अथवा पथभ्रष्ट कर सके। पथ-भ्रष्टता तो अनसमझी, अनदेखी, अनसुनी और अनजाने का परिणाम है। यहाँ मनुष्य के अन्दर उसकी हालत के दिखाने का प्रबन्ध है। न कहीं पढ़ाना है न लिखाना है; न भरमाना है न भटकाना है। ख्याल सहानुभूति व प्रेम के साथ दिया जाता है। काम करो, काम में लगो और उसका परिणाम स्वयम् देखोगे। अधिक कहने सुनने की आवश्यकता क्या है? विचार ही मनुष्य को दुर्बल बनाता है और विचार ही शक्तिशाली बनाता है। विचार

ही से उसमें ईश्वर पूजा आती है। विचार ही से निर्बलता आती है और नास्तिक हो जाता है। विचार ही से वह दुनियाँ का पुजारी बनता है। इस कारण से राधास्वामी मत में व्यर्थ और अनुपयोगी कर्म धर्म से निस्सम्बन्ध रहकर अपने सेवक, उपासक, साधक और अनुयायियों को केवल ख्याल दिला दिलाकर निजस्वरूप, सार तत्व और एकत्ववाद की ओर तवज्जह कराता है।

सार बचन की भूमिका के कथन की ओर ध्यान दोः—"मालूम होवे कि आदि शब्द कुल का कर्त्ता और स्वामी है। और आदि सुरत यानी उसके अव्वल ज़हूर का नाम राधा है। इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है। और जब इनकी धार नीचे आई तब इसी आदि शब्द से और शब्द और आदि सुरत से और सुरत और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द बराबर प्रगट होते आये और अपने अपने मुक़ाम पर क़ायम हुये।"

शब्द चेतन्य का प्राकट्य है। इसी पर सृष्टि की उत्पत्ति निर्भर है। यही कर्त्ता धर्त्ता सब कुछ है। शब्द की महिमा जैसा कि हम पहिले कह आये हैं प्रत्येक धर्म में है। वेदों का **प्रणव** (**ओ३म्**), मुसलमान सूफ़ियों का **कुन** शब्द और ईसाइयों का **कलाम** (**शब्द**) उसी की साक्षी देते हैं आदि आदि। राधा स्वामी मत में इस आदि शब्द को **स्वामी** कहा गया है। धार के रूप में शब्द का प्राकट्य होता है। हम बोलते हैं। तुम सुनते हो। हमारी जिभ्या से आवाज़ निकलती है और वह धार के रूप में जाती हुई तुम्हारे अन्दर समा जाती है। यह तुम जानते हो। आदि शब्द से जो धार निकली उसी की उल्टी व गोल धार को **राधा** कहते हैं। जिस तरह **स्वामी** आदि शब्द था उसी तरह यह **राधा** आदि सुरत

कहलाई। इनके मेल से यह जगत रचा गया और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द का क्रम चल निकला। हम सुरत और शब्द से अपने अपने मंडल बनाकर उसमें स्थित होते चले गये और उनके बीच में भिन्नता की सूरतें क़ायम होती गईं और भी इसी प्रकार होता गया।

रचना जब होगी धार के रूप में होगी और धार जब निकलेगी घेरे के रूप में चक्कर खाखाकर उसी घेरे में ठहरेगी। गति सदा गोलाकार में प्रकट होती है। यह सिद्धान्त है। देह को देखो। **राधास्वामी मत की असली पुस्तक केवल मनुष्य शरीर है** और सत्संग में उसी के अध्ययन की रुचि पैदा की जाती है। वह किसी अन्य का शरीर नहीं बल्कि तुम्हारा अपना शरीर है। इसी शरीर के तमाम अंगों में धारों का ही व्यवहार है। मस्तिष्क से धार आई। वह स्थान स्थान पर ठहरती और चक्कर खाती हुई भिन्न भिन्न इन्द्रियों, अंगों और नस नाडियों में ठहरती हुई आई व उसने भिन्न-भिन्न रूपता का दृश्य प्रस्तुत किया। हाथ में क्या है? नस नाड़ियों के सिलसिले में धार ही का तो प्रबन्ध है। जब तक धार आती जाती है, तब तक वह पकड़ता जकड़ता है, मारता है, सहराता है, तोड़ता है जोड़ता है। थोड़ा सा पहुँचे पर मज़बूत बंद लगा दो, फिर देखो होता क्या है! काम करना तो अलग वह अपनी बंधी हुई मुट्ठी तक को न खोल सकेगा और न खुली हुई मुट्ठी को बन्द कर सकेगा। यही दशा कुल इन्द्रियों की समझ लो। प्रत्येक इन्द्री में शब्द और सुरत की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ मौजूद हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। असली धार जो मस्तिष्क से आती है उसे देखो। कैसी-कैसी सूरतें बनाती है और फिर भी ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आती जाती

रहती है। इसी धार का आना जाना ही आवागवन है। यह तो तुमको थोड़ा बहुत ज्ञात होगया कि तुम स्वयम् धारों से बने हो। तुम्हारी इन्द्रियाँ धारों की गोल गोल गिरहें या ग्रंथियां हैं।

ठीक इसी प्रकार जब आदि धार उतरी तो वह गिरहें बनाती हुई आई। इन समस्त गिरहों के अन्दर सुरत और शब्द और शब्द और सुरत दोनों ही हैं। इनसे रहित एक भी नहीं है। चाहो इनकी परीक्षा करलो। इन्हीं सुरत और शब्द के सिलसिले में मन, बुद्धि, चित, अहंकार आदि सब ही लिपटे हुये पड़े हैं और उनके अन्तरगत हैं।

एक ग्रंथि सूर्य्य है। दूसरी चन्द्रमा है। तीसरी पृथ्वी है। चौथे देवता—किन्नर, गंधर्व, राक्षस आदि हैं। पाँचवीं मनुष्य है। छठवीं पशु, पक्षी, थलचर, जलचर आदि सब हैं आदि आदि। पंच भूत, आकाश आदि इसी चैतन्य धार की ऐसी ग्रन्थियाँ हैं जिनको तुम जड़ समझते हो। उसका भी प्राकट्य उसी से है। एक अपार समुद्र है जिसके क्षोभ के प्रभाव से अगणित बुलबुले बनकर एक विचित्र कारीगरी का तमाशा दिखा रहे हैं और देखने वालों को यह जगत **राधास्वामी** या **आदि शब्द और आदि धार** का दृश्य दिखाई दिया करता है।

यह हम कह क्या रहे हैं। कौन हमारी बातों को समझता है! और कौन इसे समझकर मानता है! कोई कल्पना की परिभाषा को समझे बिना जगत को कल्पित कह रहा है। कोई 'सत्' शब्द को जाने बिना इस रचना को अन हुई मान रहा है। बातें तो सबने सीख ली हैं मगर इसकी सचाई को कोई बिरला ही समझता है। क्यों बात बनाने वाला, स्वयम् कल्पना वाला और स्वयम् भी शारीरिक दृष्टि से अनहुआ नहीं है?

लेकिन क्या वह उसी की बातचीत नहीं कर रहा है और क्या बातचीत और कल्पना मिथ्या या अनहुई नहीं है ? राधास्वामी मत न शब्दों के गोरखधंधे में फँसाता है और न बातों के जाल बनाता है। जो है उसे वैसा मानकर चलो और अपने अन्दर देखो तब यह भेद खुलेगा। बातों के नाखुन से यह गुत्थी कभी नहीं सुलझाई जा सकती।

—:❀:—

इस शब्द की महिमा के विषय में भूमिका इस प्रकार लिखता है :—

"शब्द की महिमा हर एक मत में है मगर शब्द का भेद किसी मत के ग्रंथ या पोथियों में नहीं लिखा है। इसी सबब से लोग इससे नावाक़िफ़ रह गये। अब हुजूर राधा स्वामी साहब ने तफ़सील शब्दों की और उनका भेद और बुजुर्गी का हाल खोल कर साफ़ साफ़ इस वाणी में लिखा है। (बाणी से अभिप्राय सार बचन पोथी है)।"

ऊपर हम स्वयम् ही शब्द के महत्व के विषय में कुछ न कुछ कह चुके हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अन्य धर्मों की पुस्तकों का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसमें कोई हानि नहीं है।

जो लोग शब्द के प्रमाण या साक्षी को ही मुख्य या सर्वोपरि मानते हैं वे यों ही मानने वाले नहीं हैं। विवश उनके भावों की पुष्टि करनी पड़ती है। सुनिये—

कठ उपनिषद् २ ब०, १६ } (१) "यह शब्द ब्रह्म है। इस शब्द का अभिप्राय सबसे ऊंचा है। जो इस शब्द को जानता है अपने मन की कामनाओं को पूरी करता है"।

बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण चौथा अध्याय २१ } (२) "इसको जानकर ज्ञानी ब्रह्म का विचार करते हैं। वह बहुत से शब्दों का ध्यान न करे क्योंकि शब्द परेशान करते हैं।"

छाँदोग्य उपनिषद् प्रथम अध्याय ४ खंड ३ } (३) "..... उसने शब्द अर्थात् स्वर का सहारा लिया है"।

छाँदोग्य प्रथम अध्याय ४ खंड ३ } (४) "वह जो इसको जानता है, इस (ओ३म्) अक्षर की स्तुति करता है और अमृत होकर अक्षर को प्राप्त होकर देवता हो जाता है"।

नाद बिन्दु उपनिषद् ऋगवेदी } "(१) योगी सिद्ध आसन पर बैठकर वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ दाहिने कान से अंतरीय शब्द सुने। (२६)

(२) इसप्रकार शब्द का अभ्यास करने से वह बाह्य शब्दों से बहरा बन जायगा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर वह केवल १५ दिन में तुरिया अवस्था को प्राप्त करेगा। (३०)

(३) पहिले उसको समुद्र, बादल, बाढ़ और भेरी के शब्द सुनाई देंगे। बीच में घंटा और शंख सुनेगा। (३२)

(४) जब तक शब्द है तब तक आकाशी ध्यान है। अशब्द के पश्चात् ब्रह्म है। (४४-४५)

(५) जब तक शब्द है तब तक मन है। शब्द के बन्द होते ही उन्मुनि अवस्था आवेगी। (४५-४६)

(६) वह अक्षर में समायेगा। यह अशब्द की दशा अन्तिम अवस्था है। (४६-४७)

(७) इसके पश्चात् वह शंख या ढोल का शब्द नहीं सुनता। (५०-५१)

(८) नाद और बिन्दु बहुत हैं। वह ब्रह्म प्रणव में लय हो जाता है। (४८-४९)

(९) जैसे मक्खी शहद को चूसती है वैसे ही वह शब्द

में लीन हो जाता है और इसका चित निश्चल बन जाता है।

(४६)

योगाचार्य का मत मेडम ब्ल्युस्की के वाइस आफ़ साइलेंस के हवाले पर पृष्ठ २२-२४।

(१) "वह जो नाद (शब्द) को सुनता है और अशब्द नाद को सुनता है धारणा की कैफ़ियत को समझता है।" प्रथम अध्याय-पृष्ठ १४, प्रथम पंक्ति।

(२) "पहिली आवाज़ बुलबुल के चहचहे की तरह मीठी है।

दूसरी चांदी की झनकार है।

तीसरी समुद्र की लहरों की है।

चौथी बीन की आवाज़ है।

पांचवीं तुरही की है।

छटी बादल की गरज है।

जब सातवीं आवाज आती हैं, सब आवाजें मर जाती हैं। वह एक में लय होजाता है और उसीमें रहता है।" (पृष्ठ २४-२५)

ईसाइयों की युहन्ना की अंजील, प्रथम अध्याय प्रथम आयत।

"आदि में शब्द था। शब्द मालिक के साथ था। शब्द ही ने सब कुछ पैदा किया।"

सूफ़ी मौलाना रूम के फ़ारसी शेरों में भी आवाज़ (शब्द) के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन है। उन्होंने यहां तक लिखा है कि—"पैग़म्बर साहब ने कहा कि खुदा की आवाज़ मेरे कान में मानिन्द 'सदा' के पहुंचती है।"

शाह नियाज़ का भी कहना है कि तमाम दुनियां आवाज़ से भरी है लेकिन तू अपने कान के दरवाजों को खोल। खोलने का अभिप्राय यह है कि तू सुनने के रास्ते को बन्द कर डाल।

ख्वाजा हाफ़िज के शेरों में भी यह उल्लेख है कि आकाश से आवाज़ लगाई जारही है और इतना भी पता है कि घंटे की आवाज़ सुनाई देती है।

अन्य धर्मों के इतने ही प्रमाण विश्वास दिलाने को पर्याप्त हैं। संत मत के सैकड़ों विभिन्न पंथों के ग्रन्थ शब्द की महिमा से भरे हुये हैं। चूँकि यह एक ही सिलसिले की शाखें हैं इनको वर्णन करना यहाँ व्यर्थ है। **कबीर जोग** और **नानक जोग** के पढ़ने वाले स्वयम् भी जानते हैं।

राधास्वामी सार बचन में शब्दों का जो वर्णन आया है वह उस पोथी में विवरण सहित मिलेगा, अथवा इस राधास्वामी योग में समय-समय पर और स्थान-स्थान पर वर्णन किया जायगा। भूमिका में इस प्रकार लिखा है:-

"खुलासा भेद शब्द का नीचे लिखा जाता है :—

"कुल की आदि राधास्वामी यानी कुल मालिक—यहाँ शब्द निहायत गुप्त है और उसकी उपमा यानी नमूना इस रचना में कहीं नहीं है। इसी शब्द से सत्पुरुष पैदा हुये।

शब्द पहिला—सत्पुरुष का शब्द जिसको सत नाम और सत्य शब्द भी कहते हैं और जिसकी कुदरत से सोहंग पुरुष, परब्रह्म, ब्रह्म और माया प्रगट हुये।

शब्द दूसरा—सोहंग पुरुष का शब्द।

शब्द तीसरा—परब्रह्म का शब्द जिसकी मदद से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है।

चौथा शब्द—ब्रह्म शब्द जो 'प्रणव' है जिससे सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय वेद और ईश्वरीय माया प्रगट हुई।

पाँचवाँ शब्द—माया और ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना का मसाला प्रगट हुआ और आकाशी वेद ज़ाहिर हुये।

माया शब्द के नीचे विराट पुरुष का शब्द और जीव और मन का शब्द प्रगट हुआ।"

—:❀:—

इस विवरण की सूची की यदि व्याख्या की जायगी तो कठिनाई से किसी की समझ में आवेगी, क्योंकि राधास्वामी मत दुनियां का सबसे अधिक पूर्ण मार्ग है। जब तक कि आदमी अन्य मत मतांतरों के हालात से परिचित न हो, इसके कथन को नहीं जान सकता। फिर भी हमको तो समझाना ही है। किसी न किसी प्रकार हम समझाने का प्रयत्न करेंगे। प्राणायाम का गायत्री मंत्र जो हिन्दुओं में प्रचलित है उसमें सात भूमिकाओं या स्थानों का वर्णन है जो मनुष्य के अपने शरीर में मौजूद हैं। यद्यपि यह नीचे के स्थान हैं मगर इस सूची के साथ तुलना कर दिखाने में हानि नहीं है :—

१—ओ३म् भूः। २—ओ३म् भुवः। ३—ओ३म् स्वः।
४—ओ३म् महः। ५—ओ३म् जनः। ६—ओ३म् तपः।
७—ओ३म् सत्यम्।

इनमें 'भूः' जीव का स्थान है और उसी प्रकार के शब्द से सम्बन्ध रखता है। 'भुवः' पिंडी मन का स्थान है। 'स्वः' ईश्वर या विराट का स्थान है। 'महः' ब्रह्म पद, 'जनः' परब्रह्म पद, 'तपः' सोहंग पुरुष और 'सत्यम्' सत् पद या सत् नाम से तुलना (मुशाबा) है। यहाँ आकर मंत्र के सातों स्थान समाप्त होजाते हैं। आगे शुद्ध रूहानी (आध्यात्मिक) स्थान **अलख, अगम और राधास्वामी** आते हैं जो राधास्वामी धाम से सम्बन्धित हैं। इस पारस्परिक तुलना से इतना तो समझ में आयेगा कि राधास्वामी मत योंही तालीम नहीं देता। उसका नमूना वैदिक मार्ग में मौजूद है। हाँ, लोग अनभिज्ञ हैं। इन स्थानों के भिन्न-भिन्न शब्द पुस्तक के सिलसिले में समझाते हुये दिये जायेंगे।

—:※:—

शब्द के सम्बन्ध में साधारणतया जानकारी नहीं है। भूमिका में लिखा है :—

"इस वक्त शब्द के अभ्यास का ज़िक्र भी करते हैं तो सिवाय नीचे के शब्द के ऊँचे के शब्दों की उनको ख़बर भी नहीं है। और बाज़ तो विराटी शब्द को ही कर्त्ता शब्द मानते हैं। और कोई २ माया और ब्रह्म के मिले हुये शब्द का सिर्फ ज़िक्र करते हैं। मगर उसकी महिमा और सिफ्त और उसके स्थान और अभ्यास की जुगत से जिससे वह प्राप्त होवे नावाक़िफ़ हैं। इन सब शब्दों का हाल पोथी (सार वचन) में तफ़सीलवार लिखा हुआ है।"

—:❀:—

शब्द शब्द में भेद है। शब्द का उल्लेख थोड़ा बहुत हर जगह है, मगर अभ्यास की युक्ति गुप्त होजाने से किसी को ज्ञात नहीं रहा कि कौन शब्द ऊँचे स्थान का है और कौन नीचे का। चूंकि चढ़ाई तो किसी को प्राप्त नहीं होती, इसलिये जानकारी के साथ साथ विवेक नहीं आता। यह अज्ञानता है। सब ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म और परब्रह्म आदि को एक ही मान रहे हैं। यद्यपि उनके नामों पर ध्यान करने से साफ़ प्रगट होता है कि इनमें अन्तर होना चाहिये। इसी तरह इनके शब्द में भी भेद है। मगर जिस प्रकार इन नामों को एक मानकर संतोष कर लिया गया वैसे ही शब्द का भी हाल हो रहा है।

शब्द एक है मगर स्थान भेद से वह अनेक है। ऊँचे मंडल का शब्द अधिक शक्तिशाली और सूक्ष्म होता है। नीचे दर्जे का कमज़ोर होता है। बादशाह का क़ानून तो एक ही है जो सारे राज्य में व्यापक है, लेकिन बादशाह की आज्ञा, मंत्री का बयान, कर्मचारियों का कथन और निम्न श्रेणी के सेवकों की बातचीत में कितना अन्तर रहता है। गंगाजल की शक्ति, गुण और प्रवाह की आवाज़ में हर जगह भेद प्रतीत होगा जो

गंगोत्री, हरद्वार व अन्य नगरों के स्थानों पर सुनने और समझने से ज्ञात हो सकता है। यही दशा शब्द की भी है। नीचे के मंडल के शब्द कमज़ोर और ऊँचे मंडल के ज़ोरदार होते हैं। जीव का शब्द और है, ईश्वर का और है, व माया का और है। परमेश्वर और ब्रह्म अथवा परब्रह्म का दूसरा ही होगा। इन सबके एक मान लेने सेसिवाय गपल चौथ के और कुछ हाथ नहीं आता। जिस प्रकार प्रकृति के कारबार में हर जगह भिन्नता और भेद है वैसे ही आंतरिक और बाहरी शब्द में भी भेद है। मगर इसका हाल राधास्वामी मत के सिवाय और कहीं नहीं समझाया जाता। अन्य जगह तो यदि कोई व्यक्ति शब्द का अभ्यास भी करता है, तो उसे यह नहीं मालुम कि किस स्थान पर केन्द्र बनाकर अन्तरीय साधन की कमाई करानी चाहिये और कहाँ कहाँ कैसे शब्द सुने जाते हैं अथवा सुनना चाहिये। यह हृदयांगम कराने का मन्तव्य है।

राधास्वामी मत क्या है? अब इस पर ध्यान दिलाया जा रहा है। कर्म मार्ग है या ज्ञान या भक्ति? वह नीचे की पंक्तियों में इस प्रकार वर्णन किया गया है :—

"तरीक़ राधस्वामी यानी संत पंथ का भक्ति मार्ग है। यानी सच्चे और पूरे मालिक के चरणों में प्रेम प्रीति और प्रतीत करना। इसको उपासना और तरीक़त भी कहते हैं। इस मार्ग में या तो संत सत्गुरु और साधगुरु की महिमा है और या उनके असली शब्द सरूप की महिमा है।"

"संत सत्गुरु उनको कहते हैं कि जो सत् पुरुष और राधास्वामी मुक़ाम पर पहुँचे हैं। और साध गुरु उनको कहते हैं जो ब्रह्म या परब्रह्म के स्थान पर पहुँचे और जो यहाँ तक नहीं पहुंचे उनको साधू और सत्संगी कहा जाता है। इन दोनों यानी संत और साध का असली सरूप शब्द सरूप है। और जाहिरी सरूप तो इन्सानी

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

ख़िरका[1] है जो कि वे लोगों के समझाने और बुझाने और उपकार और उद्धार के लिये धर कर संसार में प्रगट होते हैं। जब यह मालुम हुआ कि यह पूरे संत या पूरे साध हैं तो फिर उनमें और सत्पुरुष या परब्रह्म में भेद नहीं माना जाता है। इस वास्ते जब जब पूरे संत या पूरे साध प्रगट होते हैं तो उनके चरण सेवक उनकी महिमा सत्पुरुष या परब्रह्म के बराबर करते हैं। और बाहर में उनकी पूजा और सेवा और आरती वगैरह उसी तौर से बजा लाते हैं जैसा कि मालिक की करनी चाहिये। और इसी ज़ाहिरी सरूप की सेवा और दर्शन और बचन व उनके चरणों में प्रेम प्रीति करने से और जो जुगत वह बतलावें उनके अभ्यास करने से सुरत यानी जीवात्मा मन और माया के जाल से अलहदा होकर आकाश में और उसके परे चढ़ती है। और अन्तर के सरूप यानी शब्द में पहुंचती है तब सच्चा और पूरा उद्धार जीवका होता है।"

—:ॐ:—

इससे प्रगट है कि राधास्वामी मत वास्तव में प्रेम मार्ग और भक्ति पंथ है। उसमें गुरु का प्रेम किया जाता है मगर यह ज़रूरी शर्त है कि गुरु या तो संत हो या साध, तब काम बनेगा। अधिक स्पष्ट शब्दों में यह एक मात्र गुरु पूजा (मुरशिद परस्ती) का मार्ग है। यह बात यहां इस वजह से साफ़ साफ़ बतादी जाती है ताकि किसी को भ्रम न रहे।

गुरु पूजा का प्रारम्भ कब से हुआ इस विषय पर कुछ नहीं कहा जा सकता। उपनिषदों के ऋषियों के समय में इसकी गुप्त परिपाटी प्रचलित थी। गुरु और शिष्य के अतिरिक्त किसी अन्य ढंग से आत्म-ज्ञान की तालीम नहीं दी जाती थी जैसा कि बृहदारण्यक आदि उपनिषदों के वर्णन से प्रगट है।

(1) मानवदेह।

तत्पश्चात् जब बुद्ध धर्म का प्राकट्य हुआ, बुद्ध भगवान् ने चारों ओर से तवज्जह हटाकर अपने शिष्यों को अपने अर्थात् बुद्ध के आदर्श के मानने, पूजने और समझने का आदेश दिया। जैनियों की तीर्थंकर पूजा में भी यही रहस्य है। इनके बाद जो जो रूहानी (आध्यात्मिक) मार्ग प्रचलित हुये, सबने गुरु महिमा पर ज़ोर दिया। यहां तक कि हिन्दू जाति गुरु की ज़ात (स्वरूप) को सब कुछ समझने लगी, जैसा कि नीचे के श्लोक से स्पष्टतया प्रगट है:--

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

यह आर्य प्रथा का साधारण नियम था। अनार्य दल इसको इस तरह नहीं मानता था। अन्त में यहूदियों में हज़रत ईसा पैदा हुये, अपने व्यक्तित्व को पेश करके उसी की पूजा की रीति चालू की और अपने को ईश्वर का बेटा बता कर स्पष्ट शब्दों में हृदयांकित कराना चाहा कि—"जो बेटे को नहीं मानता, वह बाप को कभी नहीं मानता। पिता का जानना पुत्र के जानने पर निर्भर है।" मगर ईसाई फिर भी इस रहस्य से अनभिज्ञ ही रहे। आर्य मार्ग में एक पारसी धर्म भी है जो हिन्दुओं से निकला है। इसमें भी गुप्त रूप से यही विश्वास बैठाया जाता है। बाद को जिस समय अनार्य यहूदी लोग इस्लाम के प्रभाव में आये यह मार्ग जाता रहा। मगर उसमें पारसियों के नियमों में तस्सवुफ़ (अध्यात्म) के पैवन्द लगने से सूफ़ियों का वर्ग उत्पन्न होगया। इसने फिर गुरु पूजा के नियम को चालू किया और उनमें इसकी प्रथा चल खड़ी हुई, मगर सूफ़ी सदा शरीयत वालों (कर्म काण्डी लोगों) से डरते थे, क्योंकि वे उचित और अनुचित ढंग से सताये जाते थे। मारे जाते थे और संहार

किये जाते थे। इस कारण वह दबे शब्दों में उसका निमंत्रण देते थे, और गुप्त बैठकों में अपने ढंग पर क़ुरान की व्याख्या करते हुये उसके महत्व को समझाते थे। फिर भी सूफ़ियों में जो पूर्ण पुरुष उत्पन्न हुये हैं वह स्पष्ट शब्दों में सचाई को स्वीकार करने से रुक न सके। नीचे हम दो चार शैरों का अनुवाद लिखते हैं वह हमारी विचारधारा का समर्थक व प्रमाण समझे जायेंगे।

मौलाना रूम का कथन है :—

ज़ात मुर्शिद को किया तूने क़बूल।
ज़ात में उसके ख़ुदा है और रसूल॥
औलिया का दिल है मसजिद बेगुमा।
उसमें रहता है ख़ुदाये दो जहाँ॥
यह नबी का क़ौल है—हक़ ने कहा।
हूँ बुलन्दी और पस्ती से जुदा॥
आसमाँ में और ज़मी में अर्श में।
मैं नहीं रहता हूँ कुर्सी फ़र्श में॥
तुझको मेरी गर है दिल से जुस्तजू।
दिल में मुर्शिद के मुझे पायेगा तू॥

यह कथन इतना स्पष्ट है कि व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार शम्स तबरेज़ और दूसरे महा पुरुष सूफ़ियों का हाल है। हाफ़िज़ शीराज़ी ने तो और भी जोरदार कथन किया है। जिसका भाव यह है :—

'यदि गुरु कहे तो तू नमाज़ के बिछौने को शराब से तर करदे; क्योंकि गुरु रास्ते के भेद और उसके स्थानों से बेख़बर नहीं है।'

रूहानियत (आत्मज्ञान) का प्रारम्भ गुरु की सहायता बिना नहीं होता। यह कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति को अन्त में गुरु

की सहायता लेनी पड़ती है। लेकिन कठिनाई यह है कि गुरु शिष्य का सिलसिला शैतान का जाल बन गया है। इस कारण से वह कम खतरनाक नहीं है। बाणी में जो संतसतगुरु और साधगुरु के महत्व पर बल दिया गया है उसका यही कारण है कि कोई धोके में आकर अपना जीवन बर्बाद न कर बैठे, वर्ना रूहानी नुक़सान होता है। इस विषय पर मौलना रूम का एक शैर है जिसका भाव यह है :--

"बहुत से लोग मनुष्य के रूप में इब्लीस (शैतान) होते हैं। इसलिये हर एक के हाथ में हाथ न देना चाहिये अर्थात् हर एक को गुरु नहीं करना चाहिये।"

गुरु को ईश्वर की ज़ात (स्वरूप) मानना मुसलमानों में कुफ्र है। दूसरे पंथों के अनुयायी भी इसे अच्छा नहीं समझते। लेकिन गुरु-गुरु में भेद होता है।

गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव।
सोई गुरु नित बन्दिये, जो शब्द बतावे दाव॥

गुरु को क्यों ऐसा मानना चाहिये, इस प्रश्न का उत्तर आगे दिया जायगा, यद्यपि कहने के लिये भूमिका के मूल लेख में इसका वर्णन आगया है।

—:❀:—

लेकिन संत सतगुरु या साध गुरु कम क्या मिलते ही नहीं हैं, फिर ऐसी दशा में जीवों को क्या करना चाहिये। वह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें या कोई उपाय निकालें? इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है :—

"जब तक कि पूरे संत या पूरे साध न मिलें तब तक खोजी को मुनासिब है कि उनकी तलाश में रहे। और जो कोई उनका सतसंगी यानी सेवक मिल जाय कि जिसने उनके दर्शन और सेवा बखूबी करी है और उनसे भेद शब्द मार्ग का हासिल करके अभ्यास किया है तो उससे प्रीति करे। और भेद मार्ग और मंजिल का और जुगत उसकी प्राप्ति की यानी तरीक़ अभ्यास का दर्याफ्त करके उसकी कमाई शुरू

करे। और सच्चा इष्ट राधास्वामी के चरणों में, जो कुल के मालिक हैं और जहाँ पहुँचने का इरादा हर नेक परमार्थी को मज़बूत करना चाहिये, बाँधकर अपना काम शुरू करे। जो प्रीति और प्रतीति सच्ची और शौक सच्चा और पक्का होगा तो ज़रूर कुल मालिक किसी न किसी समय पर चाहे जिस स्वरूप से दर्शन देकर इस जीव का काम अपनी दया और कृपा से बना देंगे।"

विषय स्पष्ट है व्यर्थ क्यों बढ़ाया जाय !

मगर सबसे कठिन बात यह है कि जन साधारण को राधास्वामी नाम से विरोध रहता है। वह इस नाम को स्वीकार करने से कतराते हैं और भांति-भांति की आपत्ति करते हैं। और नाम के भ्रम के कारण वह मत के धारण और स्वीकार करने में हिचकिचाहट करते हैं। उसके विषय में ऐसा लिखा है :--

"राधास्वामी नाम कुल मालिक ने अपने आप प्रगट किया है। और जबकि हुजूर साहब के चरण सेवकों को कुछ दिन अभ्यास और सत्संग करने से कुछ कुछ उनकी भारी कुदरत और गति मालुम हुई और कुछ उन्होंने अपनी कृपा से थोड़ी अपनी पहिचान बख्शी तब से उनको उसी नाम से जिस मुकाम यानी राधास्वामी पद से कि वह आये थे पुकारना शुरू किया। और वे अपनी मौज से इस कलियुग में जीवों पर निहायत दया करके संत स्वरूप अवतार धारण करके प्रगट हुये।"

"संत मत में वही क़ायदा जारी है जो और तरीक़त यानी उपासना वालों के मत में जारी है। और वह यह है कि सतगुरु पूरे यानी मुरशिद कामिल में और मालिक कुल में भेद नहीं करते। और इसी सबब से उनको उसी नाम से पुकारते हैं जो कि असली नाम उस मुक़ाम यानी पद का है जहाँ से कि वे आये हैं। राधास्वामी नाम

सुरत और शब्द की एक ही सिफ्त है जैसे समुद्र और उसकी लहरें, और शब्द और उसकी धुन, प्रेमी और प्रीतम। इन सब का मतलब एक ही है।"

—:❀:—

राधास्वामी नाम की असलियत का पता पहिले दे दिया गया है। यदि वह अपूर्ण समझा जाय तो हम अपने ढंग पर यह उत्तर देते हैं। मानना या न मानना यह जीवों के अधिकार की बात है। किसी के साथ कठोरता, वाद विवाद या हठ करने की न आवश्यकता है और न उससे कोई लाभ है। जो असलियत और आत्म ज्ञान के सच्चे जिज्ञासू होंगे वह खोज और पूछगछ के बाद जब कहीं संतुष्टता का सामान नहीं पावेंगे, इस ओर झुकेंगे। जिनको अधिकार नहीं है अथवा जो इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं करते, उनसे कहना सुनना व्यर्थ है। हमने जिस प्रकार इस नाम पर अपने निश्चय को दृढ़ किया है केवल उसी के विषय पर कहना चाहते हैं।

(१) नाम वह है जो हमको गुरु से मिलता है। इसलिये गुरु ही का प्रदान किया हुआ नाम हमारे लाभ की वस्तु है। यों तो सहस्रों कृत्रिम नामों से ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यदि पुस्तकीय नाम से सम्बन्ध रखना था तो गुरु से पूछने की क्या आवश्यकता है।

(२) हमने गुरु को सत स्वरूप (ज़ाते हक़ीक़त) मान लिया है, इसलिये वे जो कुछ कहते हैं हम उसी को ज्यों का त्यों मानकर सच्चा समझते हैं। गुरु ने राधास्वामी नाम बताया और हमने धारण कर लिया। मां अपने बच्चे को जो कहती है वह उसे ठीक समझता है। यदि हमको गुरु के बताये हुये नाम पर विश्वास नहीं है तो फिर रूहानियत (अध्यात्म) की कमाई हो चुकी। यह पहिली शर्त है। जब तक गुरु को अपनी बुद्धि के

अनुसार समझ बूझ न लेगा, तब तक कोई उनसे नाम क्यों लेने लगा! विरोधी लोग कहते हैं—'पंथ तो ठीक है मगर नाम में विरोध है।' लेकिन वह यह नहीं ख्याल करते कि नाम ही को मज़हब कहते हैं। और मज़हब क्या होता है। हम गुरु को सतपुरुष मानते हैं और उनकी बाणी को पूर्ण विश्वास से सच्चा समझते हैं।

यह विवेक विश्वास की बात है। व्यर्थ तर्क की यहां गुंजायश नहीं है। जो मान लिया वह मान लिया और बस।

(३) गुरु ने कहा—"यह निज (जाती) नाम है जिसकी मिलती जुलती धुन अभ्यास करते समय सबसे ऊँचे स्थान में सुनी जाती है।" हमने नाम धारण कर लिया। अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। जो धुन नीचे के स्थानों में सुनी गई गुरु के कथनानुसार थी। उनसे आगे के स्थानों की धुन की प्रतीत होती गई। जब वहां पहुँचे वह स्वयम् सुनने में आई या आवेगी।

(४) परम संत कबीर साहब जो संत मत के इस कलियुग में आदि गुरु कहलाते हैं, उनकी गुरु बाणी है :—

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग लगाय॥

(५) प्रत्येक शब्द में विशेष शक्ति होती है और जो व्यक्ति जिस नाम, जिस मंत्र और जिस शब्द की कमाई करता है, वही सच्चे अर्थों में उसके प्रभाव, भाव और शक्ति का उत्तराधिकारी होता है। गुरु ने उसकी कमाई की। कमाये हुये नाम का प्रताप बिना कमाये हुये नाम के प्रताप से भिन्न होता है। सारी बात कमाई पर निर्भर है। हम विशेष प्रकार के विचारों की कमाई करते हैं और जो बात कहते हैं सुनने वालों पर उसका प्रभाव तुरन्त होता है। वही बात यदि बिना कमाई करने वाला कहे तो कोई प्रभाव नहीं होता। कमाई असली

वस्तु है। गुरु ने अपना कमाया हुआ नाम हमको प्रदान किया। प्रथम तो उसकी कमाई की ख़मीरी कीमियाई प्रभाव, दूसरे हमारी अपनी कमाई का फल। इन दोनों बातों ने हमको विश्वासी बना दिया। अब इससे अधिक और क्या चाहिये।

—❀—

जब तक मनुष्य कमाई नहीं करता उसे फल नहीं मिलता, और उसका विश्वास पक्का नहीं होता। यह कहा गया है कि राधास्वामी मत मौखिक, बोल चाल या शुद्ध फिलोसफी (दर्शन शास्त्र) का मार्ग नहीं है। यह अमल (करनी) का मार्ग है। यहाँ यह नहीं कहा जाता कि 'आओ और कहो' बल्कि यहाँ यह मंत्रणा दी जाती है कि 'आओ और कर देखो।' कहने और कर देखने में बहुत बड़ा अन्तर होता है। भूमिका में वर्णन है:—

"इस मत के जानने वालों और सुरत शब्द के अभ्यास करने वालों को चन्द रोज़ में आप उनके अन्तर में मालुम हो जायगा कि यह क्या भारी नियामत और दुर्लभ पदारथ उनको मिला है। और जिस क़दर दिन दिन उनकी हालत मोक्ष और उद्धार की होती जायगी उसको यह आप देख लेंगे। और सब मतों के सिद्धान्त और मुक़ाम की और उनकी गति की आप ख़बर हो जायगी कि कौन-कौन मत कहाँ से निकला है और कहाँ तक उसकी रसाई और पहुँच है।"

—❀—

दुनिया में जितने सम्प्रदाय पैदा हुये, वह योगियों, ऋषियों, बुद्धों, तीर्थंकरों, नबियों और रसूलों की आत्मिक उन्नति के परिणाम हैं। जिसकी जहाँ तक पहुँच गई उसने वहाँ तक की तालीम अपने शिष्यों को दी। जब तक लोग अन्तर मुखी

साधन करते थे तब तक उन्हें खबर थी। जब वह बाहर मुखी होगये, वह विद्या भी लुप्त होगई और वह शब्द जाल क. आडम्बर रच रचकर उसकी ज़बानी महिमा गाने लगे। कोई किसी को कहे भी तो क्या कहे! बिना सचाई को जाने हुये कोई मानता कब है। ऋषियों ने समाधि के समय वैदिक ज्ञान और वैदिक सिद्धान्त प्राप्त किये। बुद्ध का निर्वाण पद उनकी बेख़ुदी और लय अवस्था का ज्ञान था। मूसा को तूर पहाड़ पर (अपने हृदय के अन्दर) दस आदेश मिले। हज़रत मुहम्मद साहब ने एकान्त वास में इस्लाम के सिद्धान्त प्राप्त किये आदि आदि। गणपति गणेश के उपासक योग की अत्यन्त नीची श्रेणी के अभ्यासी हैं। वैष्णव विष्णु के मानने वाले नाभि चक्र की अग्नि के उपासक हैं। शैव शिव के विश्वासी हृदय चक्र के कैलाश निवासी भगवान के मानने वाले हैं। शाक्तिक शक्ति धर्म के अनुयायी कंठ चक्र की आद्या और आदि माया के उपासक हैं। सूर्य्य देवता की पूजा करने वाले तीसरे तिल के ज्योति निरंजन के पुजारी हैं। यह सब योग के नीचे स्थानों में अटके हुये हैं। राधास्वामी मत इन सब से ऊँची तालीम देता है, जिसका वर्णन शनैः शनैः इसी पुस्तक में आयेगा। दुनिया के समस्त सम्प्रदाय इसके पेट में हैं। मगर जानकारी न होने के कारण कोई उसकी जांच पड़ताल की ओर आकर्षित तक नहीं है। यदि थोड़ा भी योग का साधन किये होते तो इन बातों को समझ सकते। जब लोग राधास्वामी मत में शामिल होकर अभ्यास करेंगे तो स्वयम् ही ऊँचे मंडल पर पहुंचकर इस अति दुर्लभ पदार्थ के हृदय से क़ायल होंगे और उन्हें अधिक कहने सुनने की आवश्यकता न रहेगी।

जब तक किसी को आत्म ज्ञान की उत्कंठा न हो और वह

दुनियां से थोड़ा बहुत भी उदासीन न हो तब तक इस मार्ग या साधन से उसको किसी प्रकार का लाभ नहीं पहुँच सकता। बाणी (पोथी सार बचन) में लिखा है :—

"यह मत और इसका अभ्यास खासकर उन लोगों के वास्ते है जिनको सच्चे मालिक के मिलने की चाह है और जिनको अपने जीव के कल्याण और उद्धार की दिल से फिक्र है और जो लोग कि दुनियां के सामान, नामवरी और मान बड़ाई और इल्म यानी विद्या को पसंद करते हैं और परमार्थ को अपना रोजगार मुकर्रर करते हैं, उनके वास्ते यह उपदेश नहीं है। और न उनको यह कलाम पसंद आवेगा; बल्कि जहाँ तक मुमकिन होगा, वह इस पर तान करेंगे और ग़लत और फिजूल ठहरायेंगे। और सबब इसका यह है कि इस कलाम को सुनकर उनका मन घबरा जाता है कि उसके मानने से उनकी दुनिया और देह के मजे बिल्कुल जाते रहेंगे और रोजगार में फ़र्क आजावेगा। इस वास्ते वे जहाँ तक बन सकेगा ऐसी कोशिश करेंगे कि यह मत जारी न होने पावे ताकि जिन जीवों को उन्होंने ग़फलत में डाल रक्खा है और तरह तरह की पूजाओं में भरमा रक्खा है और उनसे अपने रोजगार और आमदनी की सूरत पैदा कर रक्खी है, वे कौल और हुक्म बरदारी से अलहदा न हो जावें और उनकी पूजा और आमदनी में खलल न पड़े।"

यह राधास्वामी मत और उसके बड़प्पन का ढाँचा है। हुजूर आशीर्वाद दें कि जो व्यक्ति इस भूमिका को ध्यानपूर्वक पढ़े उसके दिल में राधास्वामी मत का बड़प्पन उत्पन्न हो और वह रूहानियत (अध्यात्म) की ओर आकर्षित होकर मानस जन्म और नर देही के सुफल करने का यत्न सोचने लगे।

भूमिका समाप्त

—:❀:—

राधास्वामी योग

राधास्वामी नाम, जो गावे सोई तरे।
कलि कलेश सब नाश, सुख पावे सब दुख हरे ॥

सन्देश

"सुनाना" अधिकारी को इस सन्देश का कि परम पुरुष पूरण धनी राधास्वामी जीवों को महा दुखी और भ्रम में भूला हुआ देख कर आप उनके उद्धार के निमित्त संत सतगुरु रूप धारण करके प्रगट हुये और अति दया करके भेद अपने निज स्थान का और युक्ति उसकी प्राप्ति की सुरत शब्द मार्ग से उपदेश करते हैं। जीवों को चाहिये कि उनके चरण कमल में प्रेम प्रीत करें।"

"इस मार्ग की कमाई से मन बश में आवेगा। और सिवाय इसके दूसरा कोई उपाय मन के निश्चल और निर्मल करके चढ़ाने का आकाश के परे इस कलियुग में निश्चय करके नहीं है। जितने मत संसार में प्रवृत्त हैं उन सब का सिद्धान्त संतों की पहिली मंजिल निहायत दूसरी मंज़िल तक ख़तम हो जाता है। जो सुरत शब्द का अभ्यास
१ त्रिधिपूर्वक बन आवे तो मन और सुरत निर्मल होकर और शब्द को पकड़ के आकाश के परे जो घट घट में व्यापक है चढ़ेगी और नौ द्वार अथवा पिन्ड देश को छोड़ कर ब्रह्मान्ड यानी त्रिकुटी में पहुंचेगी। और

---

(१) पोथी सार बचन राधास्वामी के पद्य अनुरूप तरतीब में इसके एक २ चुने हुये शब्द के आधार पर सार तत्त्व की शिक्षा का सिलसिला क़ायम किया गया है ताकि इसको पढ़कर असली पुस्तक के समझने में कठिनाई न हो। पाठक जन यदि इसे ध्यानपूर्वक आदि से अन्त तक पढ़ लेंगे तो मुमकिन नहीं कि वह असलीयत की समझ से वंचित रह सकें।

वहां से सुरत मन से अलग होकर आगे चलेगी और सुन्न और महासुन्न के विलास देखती हुई और सत लोक और अलख लोक और अगम लोक में दर्शन सत्पुरुष और अलख पुरुष और अगम पुरुष का करती हुई राधास्वामी के निज देश में प्राप्त होगी। इसी स्थान से आदि में सुरत उतरी थी और त्रिलोकी में आकर काल के जाल में फँस गई थी। सो उसी स्थान पर फिर जा पहुँचेगी।"

"सुरत शब्द मार्गी को यह सब स्थान यानी विष्णु लोक और शिवलोक और ब्रह्म लोक और शक्ति लोक और कृष्ण लोक और राम लोक और ब्रह्म और परब्रह्म पद और जैनियों का निरवाण पद और ईसाइयों का मुक़ाम खुदा और रूहउल कुद्स और मुसलमानों के आलमुलमलकूत और जबरूत और लाहूत सुन्न के नीचे नीचे रस्ते में पड़ेंगे और यह सब लीला देखती हुई सन्तों के प्रताप से अपने निज देश को प्राप्त होगी।" (राधास्वामी सार बचन से उद्धृत)

यह संदेश है जो हुजूर मोअल्ला मुक़द्दस की ओर से जारी हुआ था। इसकी भाषा संक्षिप्त और सरल है। शब्द सीधे सादे हैं। विषय भी कठिन नहीं है। सुनते ही कुछ न कुछ समझ में आने लगता है। मगर समझ में भी केवल उन्हीं के आता है जो अधिकारी हैं और जिनको अधिकार नहीं है उन्हें कोई लाख समझावे, वह समझ नहीं सकेंगे।

सूर्य चमक रहा है। उसके प्रकाश को केवल वह देख सकते हैं जिनकी आंखें हैं। आंखें खुली हुई हैं। आँखों में प्रकाश के तेज को सहन करने की शक्ति है वर्ना बन्द आंखें अथवा किसी प्रकार से दूषित आंखें रखते हुये भी ऐसे बहुत जीव मिलेंगे जो चमकते हुये सूर्य को न देख सकते हैं और न उसके तेज या प्रकाश की सत्ता को स्वीकार कर सकते हैं। आंख वाले मनुष्य दुनिया को प्रकाशित करने वाले सूर्य के तेज को ग्रहण करके उससे लाभ उठाते हैं। चमगादड़ और उल्लू

आंख रखते हुये भी न उसे देखेंगे, और न उसके अस्तित्व को मानेंगे।

यह अधिकार है, यह योग्यता है, यह पात्रता है। बिना अधिकार, संस्कार, योग्यता व पात्रता के लोग अपने चारों ओर प्रकृति के भंडार की बिखरी हुई दैन पर दृष्टि तक तो डाल नहीं सकते, फिर वह उससे लाभ क्या प्राप्त कर सकेंगे।

इस अधिकार के बिना किसी को कुछ नहीं मिलता। यह माना हुआ और प्रमाणित सिद्धान्त है। इसी कारण से इस संदेश में लिखा गया है कि उसका सुनाना केवल अधिकारी जीवों के ही प्रति है। दूसरे लोग इससे कम लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

जल बरसता है। सीधे बरतनों में उसकी बूंदें पड़कर भर जाती हैं, लेकिन औंधे बरतन में एक बूंद भी नहीं ठहरती। मनुष्य का मन इसी प्रकार का पात्र है। यदि वह सीधा है तो उसके अन्दर गुरु के उपदेश की अमृत रूपी बूंदें समायेंगी और यदि वह उलटा है तो हज़ार मेह वर्षा करे उसके अन्दर एक बूंद भी न समावेगी। प्रकृति की समस्त दैन बड़ी उदारता और बहुतायत के साथ हर स्थान पर बंटती रहती हैं, पर मिलती उनको है जो उसके उत्तराधिकारी हैं। औरों के हाथ कुछ नहीं आता।

कोई इस बात का भूल कर भी विश्वास न करे कि अनाधिकारी को भी गुरु के उपदेश से लाभ पहुँच सकता है। हर उपदेश केवल ऐसे ही व्यक्तियों के लिये है जो उसके अधिकारी हैं।

अब प्रश्न यह है कि वह अधिकारी कौनसे हैं? उसका उत्तर भी उसी पंक्ति में मौजूद है। दूसरी जगह जाने की

आवश्यकता नहीं है। "जो महा दुखी हैं, जो भूले भरमे हैं, जो अपने उद्धार के ख्वाहिशमंद हैं" वह ही अधिकारी हैं। और सत्पुरुष राधास्वामी ऐसों ही के उद्धार के निमित्त प्रगट हुये हैं।

भूल और भ्रम अज्ञान है। अज्ञान महा दुख का कारण है। भूला हुआ मनुष्य ही बन्धन में पड़ता है, और इस बन्धन से दुखी होकर मुक्ति या छुटकारा पाने की इच्छा करता है। जो रास्ता भूले हुये हैं या ग़लत रास्ते पर हैं और हैरान हैं उन्हीं को सद्मार्ग पर चलाने और सद्मार्ग दिखाने का प्रबन्ध है। जो अपने को यह नहीं मानता कि वह रास्ता भूला हुआ है वह किसी से क्यों रास्ता पूछेगा और कोई उसे क्या रास्ता दिखायेगा और वह किसी की बात को मानने कब लगा! जो दुख को दुख नहीं समझता और सुख की इच्छा नहीं रखता, उस सुख के प्राप्त करने की युक्ति कौन बतायेगा और क्यों बतायेगा और वह इस बताने का आदर कब करने लगा।

विद्या उनके लिये है जो विद्याहीन हैं। मुक्ति उनके लिये है जो बंधन में फंसे हुये हैं। सुख दुखी जीवों ही के लिये है, मगर शर्त यह है कि वह अविद्या, बन्धन और दुख के दर्द से बेचैन हो। यह बेचैनी और व्याकुलता ही अधिकारी का एक मात्र निश्चित लक्षण है।

भूखे के लिये रोटी और प्यासे के लिये पानी है। जिनको भूख प्यास के वेग से दुख नहीं है उनको अन्न और जल देना व्यर्थ है। वह उसका आदर तक न करेंगे।

अन्धे के लिये आंखें और बहरे के लिये कान हैं। जो अन्धा व बहरा नहीं है उसको कोई आँख और कान देकर क्यों अपना अनादर और अपमान कराने लगा।

संसार के तीन ताप की अग्नि से जो प्राणी दुख भोग रहे हैं, उन्हीं को शान्ति रूपी ठंडक देने वाली झील में गोता लगाने का अधिकार है। दूसरों को क्या पड़ी है जो उसकी ओर आँख उठाकर दृष्टि भी डालेंगे।

ऐ संसार के दुखों से पीड़ित लोगो! तुम धन्य हो! तुम्हारे ही हेतु सत् पुरुष राधास्वामी प्रगट हुये हैं। ऐ जगत के बन्धनों में फंसे हुये जीवो! तुम भाग्यशाली हो! क्योंकि तुमको ही मुक्ति दिलाने के हेतु सत्गुरु प्रगट हुये हैं। ऐ भवसागर की लहरों में थपेड़े खाने वाले मनुष्यो! तुम भाग्यशाली हो! क्योंकि तुम्हारे पार करने के हेतु गुरु मल्लाह बन कर शब्द की नौका बना कर लाये हैं। तुम अधिकारी हो और तुम्हीं गुरु के महत्व को समझ कर उनसे दया के भागी हो सकोगे। औरों को इस परम पुनीत सत्पुरुष से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। तुम गुरु के हो और गुरु तुम्हारे हैं। तुम उनके हो वह तुम्हारे हैं। आओ! और इस उपदेश के अमृत कुण्ड में डुबकी लगाओ! यह अधिकार की व्याख्या है।

—:❀:—

दूसरी बात जो इस उच्च श्रेणी के अर्थ पूर्ण संदेश में है वह यह है कि—

"सत् पुरुष राधास्वामी ने सतगुरु स्वरूप में जहूर किया है।"

सवाल है कि गुरु ने मनुष्य शरीर क्यों धारण किया? दूसरी तरह से शिक्षा और उपदेश का प्रबन्ध क्यों नहीं किया? इस प्रश्न का उत्तर देना उतना ही आवश्यक है जितना कि अधिकार के व्याख्या करने की आवश्यकता थी।

मनुष्य, मानवीय आकृति वाला है। उसके चित्त में मानवीय भाव, मानवीय अनुभव व मानवीय विचार हर समय

उठते रहते हैं। मनुष्य को मनुष्य से ही प्रेम होता है। मनुष्य और अन्य जातियों के प्राणियों में प्रेम का सम्बन्ध सच्चे अर्थों में नहीं होता। मित्रता जब होगी, जब एक ही जाति के प्राणियों में होगी। भिन्न जातियों (गैर जिन्स) के प्राणियों की मित्रता विश्वास के योग्य नहीं हैं। जो हमको मार्ग दिखाने वाला हो, उसके भाव हमारे जैसे हों और हमारी जैसी आकृति और रूप का बन कर आये, तभी तो हमारा उससे प्रेम होगा और हम उसकी ओर आकर्षित होंगे। यदि वह अन्य रूप में आता है तो हमारे और उसके बीच मित्रता होना असम्भव है। मनुष्य शेर और कुत्तों को अपने मतलब का बना लेता है मगर उनसे मित्रता नहीं करता। यह प्रकृति का अटल नियम है। यदि ईश्वर अपने पूर्ण तेज के साथ प्रगट हो तो प्रेम प्रीति के बदले उसे देखकर चित्त में भय उत्पन्न होगा। उसके तेज को आंखें सहन कब कर सकेंगी! वह एकता और समानता के बदले उल्टे हमारी व्याकुलता, अशान्ति और कष्ट क्लेश का कारण होगा। हम उसकी ओर कब आकर्षित होने लगे[1]!

बात तो हम साफ़ साफ़ सीधी सादी और सच्ची कहते हैं। यदि किसी की समझ में न आवे तो इसमें हमारा क्या दोष है।

---

(१) कुनद हमजिन्स बा हमजिन्स परवाज़।
कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़॥

अर्थ—एक जाति वाला अपनी ही जाति के साथ उड़ता है। कबूतर कबूतर के साथ बाज़ बाज़ के साथ।

गुसाईं तुलसीदास जी ने भी लिखा है—खग जाने खग ही की भाषा। यही कारण था कि शिवजी ने गरुड़ को पक्षी होने के कारण ज्ञान का उपदेश स्वयम् नहीं किया।

स्त्री और पुरुष संसार में एक जान और दो शरीर कहलाते हैं। रात दिन का रहना सहना। एक दूसरे पर इतना आसक्त है कि अपने आप को न्यौछावर करने अर्थात मिटा देने को तत्पर रहता है। पर उनमें से किसी एक की मृत्यु हो जाने दीजिये। फिर क्या दशा है? सजातीयपना चला गया। विजातीयपना आगया। एक दूसरे से भय करने लगा। यदि पुरुष अपने सूक्ष्म शरीर से आता है तो स्त्री चिल्ला कर भागती है। भूत भूत पुकार कर आकाश और पाताल को सिर पर उठा लेती है। हुआ क्या! पुरुष तो पुरुष ही था, अब उससे घृणा क्यों है? वही बात है कि विजातीयपने का दोष आगया। यह भू लोक की प्राणी है वह सूक्ष्म लोक का प्राणी है। यह भौतिक शरीर वाली है, वह सूक्ष्म शरीर वाला है। ऐसी दशा में दोनों के बीच कब और कैसे मेल होने लगा! यही दशा पुरुष की होती है। स्त्री मर गई और रात के समय अपने सूक्ष्म शरीर में पुरुष के पास आई। पुरुष डर के मारे थर थर काँप रहा है। सुधि बुधि सब भूल गया। वह उससे बातचीत तक नहीं करना चाहता। इसका कारण क्या है! वही विजातीयपने की बला! तेल में पानी पड़ेगा तो दीपक चिड़ चिड़ करेगा। अनमेल का सम्बन्ध सदा दुखदाई होता है। तुम चाहे मानो या न मानो पर हैं यह सब सच्ची सच्ची बातें।

इस दृष्टि से हम स्वाभाविक व प्राकृतिक रूप से केवल अपने सजातीय के प्रेम का ही दम भरने पर विवश रहते हैं। यह ही प्रकृति का नियम है। हम हज़ार अपने चित्त को विवश करें पर विजातीय से प्रेम होना असम्भव है। सच्चा विश्वास कभी नहीं आसकता। जब प्रीति और विश्वास की नींव दृढ़ नहीं हुई, तो फिर कैसी भक्ति और कैसा प्रेम और स्नेह?

इसलिये भाई ! यदि ईश्वर भी हमको अपना दर्शन देना चाहता है तो वह केवल मनुष्य के रूप में प्रगट होकर दे, तब तो हम उसके भक्त हो सकेंगे; और यदि वह आकाशी बना हुआ हमें पृथ्वी मंडल के प्राणियों को भक्ति सिखाना चाहता है तो फिर उससे कहो कि यह हमारी शक्ति के बाहर है।

लोग रात दिन ईश्वर ईश्वर चिल्लाते रहते हैं पर इन ईश्वर वादियों के पुजारियों में सच्चा कौन है ? एक भी नहीं। हज़ार तर्क वितर्क और युक्ति कोई सुनाया करे मगर जो बात सच्ची है वह सच्ची है। मज़हबों के भय से मनुष्य सत्य की ओर दृष्टि नहीं करता। क्या इससे कभी किसी को आत्मिक ज्ञान प्राप्त होता है ? राम २ कहो। अवतारों की पूजा और नबी रसूलों की इज्ज़त में यही भेद छिपा हुआ है। यह मनुष्य पूजा अवश्य है इससे हम इंकार नहीं कर सकते, मगर यह सचाई है।

किसी को कोई कहां तक समझाये ! लोग अपनी आंखों से देखते भी हैं मगर मानते नहीं। इसको सच्चा समझते भी हैं पर वृथा तर्क वितर्क में पड़े रहते हैं। हिन्दुओं में विष्णु के दस अवतार माने जाते हैं, परन्तु नरसिंह, वाराह, कच्छ और मच्छ के मन्दिर कितने हैं ? राम, कृष्ण और बुद्ध के अगणित हैं, क्योंकि वह मनुष्य रूप वाले थे।

मुसलमानों में मानव पूजा (आदम की सिजदा) करने की प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती है। अन्त में सूफियों ने उसी मानव पूजा (आदम परस्ती) के नियम को (मुरशिदपरस्ती) गुरु पूजा के रूप में रिवाज दिया। तब यह कमी पूरी हुई। ईसाइयों में मसीह के रूह में ईश्वर के पूजने का आदेश है। यह रहस्य है, गुप्त भेद है, जो कठिनाई से किसी २ की समझ में आता है।

सार बचन की बाणी है :—

(६४) राधास्वामी भक्ति बरन बतायें री।
राधास्वामी गुरु की भक्ति दृढ़ायें री॥
(६५) राधास्वामी वेद कतेब उड़ायें री।
राधास्वामी मुरशिद क़ौल ठहरायें री॥
(६६) राधास्वामी मुरशिद ख़ुदा दिखायें री।
राधास्वामी पीर परस्तो सिखायें री॥

राधास्वामी मत दुनियाँ में अकेला पंथ है जो विरोधियों के बुराभला कहने और उँगली उठाने की परवाह न करता हुआ सच्चे और साफ़ शब्दों में गुरू पूजा के सनातन, असली और सच्चे पंथ का पुनरुद्धार और प्रसार करता है। सूफ़ी इत्यादि बेचारे फिर भी डर के मारे सार वस्तु के प्रगट करने में आनाकानी करते हैं। यहाँ जो बात है वह साफ़-साफ़ है। लगाव-लपेट, और बनावट से सम्बन्ध नहीं रक्खा जाता। यह बाणी है जो मीनार की चोटी पर चढ़ कर सुनाई गई है।

यह सत् पुरुष राधास्वामी के सतगुरु स्वरूप और नर-स्वरूप धारण करने के सवाल का जवाब है।

—:❀:—

संदेश में इस बात पर जोर दिया गया है कि—"(सत्गुरू) अति दया करके भेद अपने निज स्थान का और जुगति उसकी प्राप्ति की सुरत शब्द मारग से उपदेश करते हैं। जीवों को चाहिये कि उनके चरन कमल में प्रेम और प्रतीत करें।"

निज स्थान और सुरत शब्द योग का वर्णन अपने स्थान पर किया जायेगा। यहाँ प्रेम और प्रतीत के सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ लिखी जारही हैं।

यह बता दिया गया है कि प्रेम केवल सजातीय के साथ ही किया जा सकता है। प्रेम और प्रतीत करने से प्रेमी और

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

प्रीतम के भावों में समता आती है और जो गुण एक में मौ
होता है दूसरे में भी सहज में ही उतर आता है। मन ...
निर्मलता बिना सच्चे प्रेम के नहीं होती। जब तक मन निर्मल नहीं होता, एक के भाव का प्रतिबिम्ब और प्रभाव दूसरे पर नहीं पड़ता। यह भी प्राकृतिक नियम है। यदि शीशे में तनिक भी दोष है तो रूप भली भाँति दिखाई नहीं देता। मनुष्य कुछ भी न करे, केवल किसी के सच्चे प्रेम को चित्त में बसा ले और वह सहज ही में उसके चित्त की दशा, उसकी स्वच्छता और सम दृश्यता का उत्तराधिकारी बनता चलेगा।

सूफ़ियों की कहानी है :—

क़ैसर रूम (आगसटस सीज़र-रूम के राजा) के दर्बार में चीनी चित्रकार नौकर थे, जिनको अपनी कला पर गर्व था। रूमियों को भी किसी सीमा तक इस कला की जानकारी थी सम्भव है वह सूफ़ी पंथ के जानकार रहे हों। उन्होंने भी चित्र खींचने का दावा किया। क़ैसर को इनकी परीक्षा की सूझी।

आमने सामने की दीवारें चित्र खींचने के लिये नियत करदी गईं। दोनों पक्ष पर्दा डाल कर चित्र बनाने लगे। चीनियों ने बादशाह से सामान के लिये बहुत कुछ माल माँगा जो बड़ी उदारता से दिया गया, मगर रूमियों ने एक पैसा भी नहीं माँगा। दोनों ही पर्दों के भीतर अपना अपना काम करते रहे। आख़िर महीनों के बाद चीनियों ने कहा कि चित्र तैयार हो गये। बादशाह ने रूमियों से पूछा। इन्होंने भी कह दिया कि हमारे भी चित्र तैयार हो गये हैं। परीक्षा के दिन बादशाह आया। उसे ख़याल था कि चीनी इस कला में श्रेष्ठ और विख्यात हैं। पहले उनका पर्दा उठाया गया। चित्र बहुत बढ़िया दिखाई दिये। बादशाह अति प्रसन्न हुआ। फिर रूमियों से पर्दा उठाने

को कहा गया। पर्दा उठा दिया गया और देखो जो कुछ चीनियों ने इतना माल और सामान लेकर चित्र बनाया था हूबहू वही चित्र बिना किसी त्रुटि के रूमियों की दीवार पर भी दीख पड़ा; बल्कि इसमें दूसरे की अपेक्षा अधिक सुन्दरता थी। देखने वाले देख कर चकित रह गये। जिभ्या बन्द! चीनी खुद हैरान! यह चमत्कार था या सचमुच कारीगरी थी। बादशाह ने सवाल किया। "इस समता का रहस्य क्या है? जब तुमने इनके काम तक को नहीं देखा तब फिर इन जैसी तसवीर कैसे बनाली?" "हिकमते चीन हुज्जते बंगाला" यह एक प्रसिद्ध कहावत है। चीनी बड़े कारीगर होते हैं। बंगालियों से अधिक (हुज्जत) तर्क करने वाली संसार में कोई जाति नहीं है। रूम के सूफ़ियों ने जवाब दिया। "इन्हीं (चीनियों) ने तस्वीर बनाई, हमने केवल दीवार को रगड़-रगड़ कर खूब स्वच्छ और चमकदार बना लिया और चीनी चित्र का प्रतिबिम्ब हमारी स्वच्छ और चमकदार दीवार पर पड़ा है। जो वहाँ है, वही यहाँ है। एक बाल बराबर भी अन्तर नहीं है।"

इस उत्तर से बादशाह अति प्रसन्न हुआ और दोनों को एक समान इनाम दिया।

यह मन की निर्मलता का एक दृष्टान्त है। मन को प्रेम का माँझा दे देकर खूब स्वच्छ और शुद्ध बनाते चलो। इसमें न कुछ लगता है न कुछ अधिक परिश्रम ही करना पड़ता है। जब प्रेम और प्रतीत के रंग से रंगा हुआ मन सत् गुरु के समीप उपस्थित होगा तो स्वयम् ही उसमें गुरू की कमाई की हुई असलीयत का नक़्शा स्थित हो जायगा और सहज में काम बन जायेगा।

प्रेम और प्रतीत करने के आदेश का यह कारण है।

मगर जीव यों ही प्रेम नहीं करते। इस कारण उनको

शब्द योग का साधन बता कर और सत्संग करा कर बाह्य और अन्तरीय सहायता दी जाती है। तब धीरे-धीरे प्रेम का जादू अपना प्रभाव डालकर शिष्य को गुरू की संगत, प्रेम, सत ज्ञान और आत्मिक ज्ञान का उत्तराधिकार प्रदान करता है।

—:❀:—

अधिकार, गुरू की संगत, सेवा और सुरत शब्द योग का संकेत करके सन्देश में इस अभ्यास की आवश्यकता वर्णन की जाती है।

पहली बात यह है कि संसार में जितने दुख और बन्धन हैं वह मन की चंचलता के परिणाम हैं। मन की चंचलता ही अज्ञान का मूल कारण है और इस अज्ञान के कारण हम इस शारीरिक जगत में फंसे हैं। इस बन्धन से छुटकारा पाने का साधन यह है कि पहले अभ्यास करके मन को वश में लाया जाय। फिर इसी मन पर अधिकार पाकर आकाश के परे पहुंचाया जाय और तब उससे ज्ञान, मुक्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी।

इन संक्षिप्त शब्दों में इतना विषय भरा हुआ है कि उसकी व्याख्या के लिये दफ्तर के दफ्तर की आवश्यकता है, पर हम उसे यहाँ थोड़ा-थोड़ा बताकर धीरे-धीरे उसके गुप्त भेद को दूसरे बचनों में खोलते जायेंगे।

मन को आकाश के परे क्यों पहुँचाया जाय? क्योंकि आकाश या गगन मंडल से ही तत्वों की उत्पत्ति होती है। तत्वों ही से शरीर, इन्द्रिय, मन और मस्तिष्क बनते हैं, और तत्वों ही से संसारी पदार्थ प्रगट होते हैं और वह इनसे बंध जाते हैं। इस कारण मन को शुद्ध करके प्रथम इनके विवेक की आवश्यकता है और फिर इन तत्वों के मंडलों के परे जाना है।

सार ज्ञान और सत् ज्ञान इनके परे ही है। यह कारण अभ्यास कराने और मन के ऊपर चढ़ाने का है।

दूसरी बात यह है कि चंचल मन को निश्चल और निर्मल किस तरह किया जाय? उसकी सबसे अधिक सहज विधि शब्द का सुनना है। शब्द हर जगह, हर मंडल और हर स्थान में व्यापक है। शब्द में मन के एकाग्र करने की स्वाभाविक शक्ति और आकर्षण मौजूद है। यहाँ इस बाहरी जगत में गाने बजाने से चित्त की एकाग्रता और मन की स्थिरता का भेद सब को मालूम है। गाने बजाने को सुनकर मन स्वयं इसकी ओर आकर्षित होकर निश्चल और स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार जो लाभ बाहर शब्द के सुनने से होता है वही लाभ अन्तर के शब्द के सुनने से होता है। जो यहां है वही वहां है। इस अन्तर के शब्द के सुनने से चित्त में एकाग्रता की शक्ति आयेगी और अभ्यास करते-करते धीरे-धीरे वह एक स्थान को पार करता हुआ स्वयं दूसरे स्थान की ओर बढ़ता चलेगा, विचार शक्ति बढ़ेगी और जब वह सब मंडलों को पार करके सार तत्व के मूल स्थान पर पहुँचेगा, उसे परमानन्द और सदा के लिये मोक्ष प्राप्त हो जावेगा और जन्म मरण का खटका नितान्त दूर हो जायगा।

तीसरी बात जो इशारे के तौर पर कही गई है वह यह है कि इस आत्मा तक पहुँचने मात्र के सिलसिले में शक्ति लोक, ब्रह्म लोक इत्यादि इत्यादि सब रास्ते में मिलेंगे। उनकी यात्रा उसे उत्साहित करती हुई आगे की ओर रुचि दिलाती जायगी।

यह लोक लोकान्तर, वास्तव में रचना में मौजूद हैं या यह नितान्त मनगढ़न्त और कल्पित हैं? सन्तों का कहना है कि वह लोक लोकान्तर भ्रम नहीं हैं बल्कि यह यथार्थ में हैं!

यहाँ पर हर वस्तु का मंडल है, सूर्य मंडल, चन्द्र मंडल, वृहस्पति मंडल इत्यादि सभी हैं। इसी तरह शक्ति मंडल, शिव मंडल और ब्रह्म मंडल भी हैं। बिना मंडल के ब्रह्मांड का कार्य नहीं चलता। इसलिये यहां उनका रहना आवश्यक है। इन्हीं के नामों को भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न नाम और रूपों में वर्णन किया है। यदि कोई नियम पूर्वक अभ्यास की सहायता से ऊपर की ओर चढ़ाई करता हुआ चलेगा तो सहज रीति से रास्ते में इनको देखता हुआ असल पद की ओर चला जायगा और वहाँ नित्य परमानन्द, नित्य जीवन और नित्य मुक्ति का भागी हो जायगा।

यह इस सन्देश का परिणाम है जो थोड़ी सी पंक्तियों में वर्णन कर दिया गया। अब आगामी वचनों में इन कुल विषयों की व्याख्या की जायगी। सन्देश सार मात्र है। संक्षिप्त वर्णन है। आगे वचनों में उसी की स्पष्ट व्याख्या है।

❀ इति संदेश ❀

रियायत !

'शिव' के ग्राहकों को हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें पौन मूल्य में मिलेंगी। थोड़ी सी प्रतियां शेष हैं। अतः मँगाने की जल्दी करें। डाक खर्च अलग होगा।

राधास्वामी जोग

'शिव' में सितम्बर ५६ ई० से कई अङ्कों में क़रीब ६२५ पृष्ठों में प्रकाशित होगा। इसमें सब प्रकार के योगों की पूर्ण व्याख्या व तुलना की गई है और साधन विधियों का भी वर्णन किया गया है, बड़ी अमूल्य पुस्तक है। केवल थोड़ी सी प्रतियाँ छपवाई जारही हैं। अतः प्रेमी सज्जन तुरन्त 'शिव' के ग्राहक बन जांय अथवा अपना अलग आर्डर भेज दें, वर्ना बाद में मिलना कठिन होगा।

—मैनेजर

शब्द गुन्जार (उर्दू)

इस पुस्तक में हुजूर दातादयाल के अत्यन्त रसीले मनोहर और श्रेष्ठ शब्दों का संग्रह है। रोजाना पाठ के लिए एक बड़ी उत्तम पुस्तक है। रियासत हैदराबाद में तो हर जगह के सतसंग में इसका पाठ होता है। उत्तर प्रदेश, दहली, प्रान्त पंजाब आदि में भी अनेक स्थानों पर इसका पाठ होता है। सत्संगी भाई शौक से मंगा सकते हैं। केवल थोड़ी कापियाँ रह गई हैं। मँगाने वाले जल्दी करें। एक कापी का मूल्य १।) रु० डा० ख० अलग।

मिलने का पता:—
मैनेजर 'दयाल' केशवगिरी,
हैदराबाद (दक्षिण)

शब्द सार (हिन्दी)

इस पुस्तक में महर्षि जी महाराज के अत्यन्त मनोहर और रसीले ११० शब्दों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। यह नित्य प्रति पाठ के लिए बड़ी श्रेष्ठ और अच्छी पुस्तक है। थोड़ी सी प्रतियाँ रह गई हैं। मँगाने की जल्दी करें। मूल्य ।।।)

शिव सा० प्र० मंडल पो० दयालनगर (अलीगढ़)

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज कृत

हिन्दी की पुस्तकों का परिचय पत्र

महारामायण—महर्षि जी ने रामायण के सात काण्डों को योग साधन की सात सीढ़ियाँ बताकर गुप्त विविधों को स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और भगवान राम के जीवन से उसे प्रगट किया है। प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन क्रियात्मक साँचे में ढालने के लिये अमूल्य रत्न है। प्रथम संस्करण समाप्त-सा है। इसके दो खंड—

अनुभव खंड व सिद्धि खंड बड़े महत्व के हैं। इनका मूल्य १॥)।

आत्मिक प्रायमर उर्फ आत्म ज्ञान प्रकाश—जीवन के ध्येय को समझाने वाली, भूले और भ्रमों में फँसे हुये लोगों को स्पष्ट रूप से सद्मार्ग दिखाने वाली सरल और सुगम भाषा की बड़ी उत्तम पुस्तक है। मू० ॥)

क़ानून ख्याल—जैसा कि इस पुस्तक के नाम से प्रगट है इसमें विचार का नियम या क़ानून क्या है, कैसे काम करता है, उचित और अनुचित विचारों का क्या फल होता है, विचार में क्या-क्या शक्ति भरी पड़ी है आदि आदि, अर्थात् इस विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है। बड़े महत्व की पुस्तक है। मू० १)

जैन वृतान्त—जैन राजघराने के महात्माओं और देवियों के त्याग, वैराग, घोर तपस्याओं और संयम नियम की गाथायें बड़ी शिक्षाप्रद हैं। चूंकि महापुरुष किसी जाति, धर्म या समाज विशेष की सम्पत्ति नहीं होते, उनके उपदेश और जीवनी सभी के लिये लाभप्रद होती हैं। मू० ॥)